• वर्ष ६८ • अंक ११ • मूल्य ₹२०

सितम्बर २०२६

मासिक परोपकारी

विशेषांक - कबीरपंथी रामपाल दास के पाखंड की समीक्षा



युग प्रवर्तक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलाससमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।

वर्ष : ६८ **अंक** : ११
दयानन्दाब्द: २०२
विक्रम संवत् भाद्रपद २०८३
कलि संवत् - ५१२७
सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२७

•

सम्पादक
डॉ. वेदपाल

•

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४
०८८९०३१६९६१

•

मुद्रक- डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
९४१४००३४६८

•

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक प्रति - २०/- रु.
एक वर्ष - २०० रु.
पाँच वर्ष - ९०० रु.
आजीवन (२० वर्ष) - ३५०० रु.
वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
०७८७८३०३३८२
ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

सितम्बर - २०२६

विशेषांक - कबीरपंथी रामपाल दास के पाखंड की समीक्षा

अनुक्रम

www.paropkarinisabha.com | email : psabhaa@gmail.com
उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com • gallery • videos

कबीरपन्थी सन्त रामपाल दास का भ्रमजाल

कबीरपन्थी सन्त रामपाल दास अपने पन्थ का प्रचार करते हुए अनेक दम्भपूर्ण कपोलकल्पित बातों का प्रचार करते समय वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती पर भी आक्षेप करते रहते हैं। महर्षि की पंक्तियों को उद्धृत करने से पूर्व यदि उनके मूलस्रोत के पूर्वापर प्रसंग पर विचार किया होता तो इन्हें आलोचना का अवसर नहीं मिलता, किन्तु फिर ये मनघड़न्त कल्पनाओं के द्वारा अपने आपको एकमात्र ब्रह्मज्ञानी सन्त कैसे घोषित करते? अत: इनके द्वारा उठाये किन्तु वाक्छल से परिपूर्ण बिन्दु निष्पक्ष विशेषण की अपेक्षा रखते हैं-

1. आपने वेदों को प्राचीनतम धर्मग्रन्थ मानते हुए वर्तमानकालिक भाष्यकारों का नाम लिए बिना ''कलियुगी ऋषियों'' जैसे पदों से विशेषित कर उनके भाष्यों को इस प्रकार का भाष्य कहा है- ''कलियुगी ऋषियों ने वेदों का टीका (भाषा भाष्य) ऐसे कर दिया जैसे कहीं दूध की महिमा कही गई हो और जिसने कभी जीवन में दूध देखा ही न हो और वह अनुवाद कर रहा हो।''

सन्त जी यदि आपने दूध देखा है और आप उसे अच्छी प्रकार पहचानते भी हैं, तब आप इन भाष्यों का सम्पूर्ण तो क्या-कुछ सूक्तों/मन्त्रों का प्रतिपद विवेचन कर युक्तिप्रमाणपुरस्सर इन भाष्यों की त्रुटियों को प्रकट क्यों नहीं कर देते ? कलियुगी लिखकर लांछित करने का दुष्कर्म किसलिए कर रहे हैं? प्रतिपद समालोचना न करने से यह क्यों न समझा जाए कि आप में इसका साहस और सामर्थ्य ही नहीं है।

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं स तस्य निन्दां सततं करोति । यथा किराती करिकुम्भजातां मुक्तां परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जाम् ॥

यह नीतिवाक्य आप जैसों के लिए कहा गया प्रतीत होता है।

2. ''वह परमात्मा कबीर साहेब (कविर् देव) है।''''इसको कविर्+देव लिखें तो भी कबीर परमेश्वर का बोध है। कवि:+देव लिखें तो भी कबीर परमेश्वर अर्थात् कविर् प्रभु का ही बोध है। इसलिए कविर्देव उसी कबीर साहेब का ही बोध करवाता है। ''तथा'' कोई कहे कि कविर्देव को कबीर परमेश्वर कैसे सिद्ध कर दिया यह तो व्यर्थ का वाद-विवाद ही है।''

उक्त के समर्थन में पते कुरआन की आयतों के दे रहे हैं। वाह सन्त जी खुब रही-पूछी खेत की कही खलिहान की। सिद्ध वेद से करने चले और पते लिख मारे कुरआन के। लिखते भी क्यों नहीं, वेद में तो ढूंढ़ने पर तिनके जैसा सहारा भी नहीं मिला।

महाराज आप जैसों के विषय में ही कहा गया है ''बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।'' वेद व्याख्यान के कुछ नियम हैं, जिन्हें सारे विश्व के संस्कृतज्ञ और वेदाध्येता स्वीकार करते हैं। निघण्टु, यास्कीय निरुक्त, व्याकरण, वैदिक व्याकरण के लिए विशेष रूप से प्रत्येक वेद से सम्बद्ध प्रातिशाख्य तथा ब्राह्मणग्रन्थों का ज्ञान है। यास्क के अनुसार वेद के किसी एक पद को किसी मन्त्र से लेकर (उसका) व्याख्यान नहीं करना चाहिए। किसी मन्त्र का पृथक् रूप में व्याख्यान न करके प्रकरण को दृष्टि में रखते हुए ही व्याख्या की जाती है। मन्त्र का व्याख्यान करते समय मन्त्र का देवता (प्रतिपाद्यविषय) भी जानना चाहिए। शौनक ने तो देवता की उपेक्षा करने वाले को पापी कहा है-द्र0 बृहद्देवता। और आप हैं कि मन्त्र के एक पद 'कवि:' को लेकर उसे कबीर (काशीवासी जुलाहा कबीर) सिद्ध कर रहे हैं।

दुर्जनतोष न्याय से यदि यह मान भी लें कि '**कविः**' पद के अनेक अर्थ हैं। तब भी ऐसे पदों का अर्थ निर्धारण करने के लिए जो कसौटियां भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में दी हैं, वे आपके विपरीत जाती हैं। जैसे-

ऐसे पद जिनका अर्थ स्पष्ट न हो रहा हो, तब उनके अर्थ का निर्धारण करते समय निम्न बिन्दुओं को दृष्टिगत कर अर्थ निर्धारित किया जाता है-

संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः।।
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः।।

वाक्यपदीयम्

उदाहरणार्थ राम शब्द को लें, यह दशरथपुत्र राम, बलराम तथा परशुराम का वाचक है, किन्तु 'रामलक्ष्मणौ' में राम पद दशरथपुत्र राम का ही बोध कराता है, क्योंकि लक्ष्मण के साथ इसी का साहचर्य है। इसी प्रकार 'रामार्जुनौ' में राम और अर्जुन दो पद हैं। राम पद से तीनों राम प्राप्त होते हैं और अर्जुन पद से मध्यम पाण्डव अर्जुन, वृक्ष विशेष तथा कार्तवीर्य सहस्रार्जुन इन तीन का बोध होता है। प्रकृत रामार्जुनौ में राम पद से परशुराम तथा अर्जुन पद से सहस्रार्जुन ही गृहीत होता है, विरोधिता के कारण। यदि कोई यहां भी राम पद से दाशरथि राम तथा अर्जुन से मध्यम पाण्डव के ग्रहण का आग्रह करेगा तो उसके ज्ञान पर हंसी से अधिक रोना ही होगा। इसी प्रकार आप द्वारा 'कविः' पद का अर्थ कबीर करना है। आपका वेदज्ञान तो दूर संस्कृतज्ञान भी हंसने के बजाय रोने का ही आश्रय है। इस सूझ के लिए तो-

जो बात की खुदा की कसम लाजवाब की।
पापोश में लगाई किरण आफताब की।।

'**कविः**' पद '**कव-वर्णने गतौ**' तथा '**कु शब्दे**' धातुओं से इन् प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है, जिसके **अर्थ**-क्रान्तदर्शी, सर्वज्ञ, ब्रह्म, सर्वदृक् हैं। **प्रमाणत्वेन वाचस्पत्यम्** भाग 3, पृ.1831-32 पर '**..... कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः**' मन्त्र ही दिया गया है। शब्दकल्पद्रुम भाग 2 पृ. 68, हलायुधकोश पृ. 214, डॉ. सूर्यकान्तकृत संस्कृत-हिन्दी-इंग्लिश डिक्शनरी पृ. 141 तथा मोनियर विलियम्स-कृत संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी पृ. 264 भी द्रष्टव्य हैं। वैदिककोश निघण्टु 2.14 तथा 3.15 भी द्रष्टव्य हैं।

कविः-कविर्-कबीर-वेदमन्त्र में सन्धियुक्त 'कविर्मनीषी' में कविर् पद के कारण आपको भ्रम हुआ अथवा वाक्छल का सहारा लेकर जनसाधारण को भ्रमित करना चाहते हैं। संस्कृत का साधारण विद्यार्थी भी जानता है कि 'कवि' प्रातिपादिक से 'सु' प्रत्यय होकर 'कविः' पद बनता है। इसी के विसर्ग (:) को रेफ होकर कविर् हो गया है। मन्त्रस्थ 'कविः' को कबीर मानना आपकी संस्कृत की अयोग्यता का द्योतक है। वेद में इतिहास मानने वाले 'वैदिक इण्डेक्स' के लेखक ए.ए. मैक्डानल तथा ए.बी. कीथ और मैक्समूलर, राहुल सांकृत्यायन जैसों को भी जो बात नहीं सूझी वह आपको सूझी है।

समग्र मन्त्र तथा इसमें कवि के साथ पठित अन्य विशेषण आपकी चालाकी (वाक्छल) को पूर्णतः ध्वस्त कर रहे हैं। तद्यथा-

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।

यजु. 40.8

मन्त्र का देवता आत्मा है। मन्त्रस्थ प्रथम पद 'स' के परामर्शक विशेषण रूप में-पर्यगात्, शुक्रम्, अकायम्, अव्रणम्, अस्नाविरम्, शुद्धम्, अपापविद्धम्, कविः, मनीषी, परिभूः, स्वयम्भूः, याथातथ्यतः अर्थान् व्यदधात् हैं।

आपके कथन–''वह मानव सदृश शरीर युक्त है।'' को मन्त्रस्थ अकायम्, अव्रणम्, अस्नाविरम् पूर्णतः नेस्तनाबूद कर देते हैं। महर्षि दयानन्द के भाष्य से तो आपको सहारा मिलता ही नहीं। यजुर्वेद के प्रसिद्ध भाष्यकार उवट एवं महीधर के अर्थों को भी देखिये तो सही–

अकायं न विद्यते कायः शरीरं यस्य स तथोक्तः। अव्रणं कायरहितत्वादेवा–स्नाविरं स्नायुरहितमकायत्वादेव... कविः क्रान्तदर्शनः, मनीषी मेधावी.....उवटः ।

अकायं न कायः शरीरं यस्य तत्। अकायत्वादेवाव्रणमक्षतम्। अस्नाविरं न विद्यन्ते स्नावाः शिरा यत्र तदस्नाविरं स्नायुरहितम्....।ईदृशोऽपि पूर्वोक्तं शुक्रम्–अकायमित्यादिविशेषणविशिष्टं ब्रह्म प्राप्नोतीत्यर्थः ।अव्रणोऽस्नाविर इति विशेषण द्वयेन स्थूलशरीरप्रतिषेधः।महीधरः ।

सन्त जी काशीवासी कबीर एक सौ बीस वर्ष रहे चाहे बारह सौ, किन्तु आपकी चार सौ बीसी नहीं रहने वाली। मन्त्रस्थ 'कविः' का कबीर से कोई लेना देना नहीं। मन्त्रस्थ 'कविः' तो 'कौति शब्दयत्युपदिशति स कविः' सृष्टि के आदि में वेदोपदेष्टा परमेश्वर का परामर्शक है।

3. दो प्रभु–अहं दा गृणते.... ऋ०10.46.1, हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे यजु० 13.4, 23.1, 25.10 तथा हिरण्मयेन पात्रेण.... ओ३म् एवं ब्रह्म यजु० 40.17 ये तीन मन्त्र उद्धृत कर ''उपरोक्त पवित्र वेदों के तीनों मन्त्रों ने दो प्रभु सिद्ध किए'' लिखा है।

सन्त जी संसार में सभी आंख के अन्धे नहीं हैं कि आप वेद का नाम लेकर जो भी लिख मारें उसे ही सत्यवचन स्वीकार कर लें। मन्त्रस्थ पतिरेक आसीत् में 'एकः' पद के रहते दो की कल्पना भी नहीं हो सकती। उवट एवं महीधर ने भी भाष्य करते समय एक के साथ एव का प्रयोग कर किसी सन्देह के लिए अवसर नहीं छोड़ा है। तद्यथा....**'पतिरीश्वर एक एवासीत् अभूत्'**– उवटः, **'स च जातः उत्पन्नमात्र एक एवोत्पत्स्यमानस्य सर्वस्य जगतः पतिरीश्वर आसीत्'** – महीधरः । एवकार के विषय में किसी संस्कृतज्ञ से समझ लीजिए कि 'एवकारस्त्रिधा मतः' का तात्पर्य क्या है?

हिरण्मयेन पात्रेण मन्त्रस्थ 'ओ३म् खं ब्रह्म' के विषय में सर्वानुक्रमसूत्र का निम्नवचन द्रष्टव्य है–

''हिरण्मयेनादित्योपासनमो३मिति नामनिर्देशो ब्रह्मणः। खं ब्रह्मेत्या– काशरूपमन्ते ब्रह्म ध्यायेत्।'' सूत्रकार डिण्डिमघोष कर कह रहे हैं कि– 'ओ३म्' यह ब्रह्म का नाम निर्देश है।

महाराज! प्रभु एक है और उसका नाम है ओ३म्। यहां नाम निर्देश भी है और संख्या भी–एक ही है। छिद्रान्वेषण करते हुए एक बात आप लिख ही बैठे कि– ''अब पवित्र यजुर्वेद की महिमा कहें कि प्रभु की यज्ञीय स्तुतियों की ऋचाओं का भण्डार है।.... और यह लिखें नहीं कि वह ''यजुर्वेद'' है। तो उस वस्तु (पवित्र पुस्तक) को कैसे पाया जा सके ? उसके लिए लिखना होगा कि वह पवित्र पुस्तक 'यजुर्वेद' है।''

सन्त जी इसी प्रकार स्वीकार कर लीजिए कि वह प्रभु एक है और उसका नाम 'ओ३म्' है। आपके द्वारा द्धृत मन्त्रों तथा सम्पूर्ण वेद में जिसके गुणों का वर्णन है। यजुर्वेद के अन्तिम मन्त्र में उसका स्पष्ट नामोल्लेख 'ओ३म्' हुआ है। कठोपनिषद् भी द्रष्टव्य है।

4. मुक्त का स्थान – सन्त जी को मुक्ति की चिन्ता हो रही है कि मुक्तात्मा एक स्थान पर रहता है अथवा विचरता है। आपकी चिन्ता है कि महर्षि को मानें अथवा वेद को ? आप वेद को तो समझते नहीं (या समझना नहीं चाहते–यह आप ही जानते होंगे) अतः आप महर्षि के मन्तव्यों पर श्रद्धापूर्वक विश्वास कर तदनुकूल आचरण करें, तब मुक्ति में स्वयं देख लेना कि–एकत्र रहेंगे अथवा

सर्वत्र विचरेंगे। इससे पूर्व आपके लिए यह बात पूर्णतः बेमानी है।

पुनरपि जिज्ञासुजनों के ज्ञानार्थ-महर्षि-मन्तव्यों की बात तो दूर, महर्षि की अक्षर-मात्रा तक शास्त्रानुकूल है, यदि कोई नहीं समझता तो इसमें महर्षि का क्या दोष? निरुक्तकार का कथन कि- **'नैष स्थाणोऽपराधो यदेनमन्धो न पश्यति'** सदैव स्मरणीय है। महर्षि-मन्तव्य तथा उसके समर्थक प्रमाण निम्नवत् हैं-

प्रश्न-मुक्ति में जीव का लय होता है वा विद्यमान रहता है?

उत्तर-विद्यमान रहता है।

प्रश्न-कहां रहता है? उत्तर-ब्रह्म में।

प्रश्न-ब्रह्म कहां है और वह मुक्त जीव एक ठिकाने रहता है वा स्वेच्छाचारी होकर सर्वत्र विचरता है ?

उत्तर-जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है, उसी में मुक्त-जीव अव्याहत गति अर्थात् उसको कहीं रुकावट नहीं, विज्ञान आनन्दपूर्वक स्वतन्त्र विचरता है। इसके पश्चात् महर्षि ने वेदान्तदर्शन, कठ एवं छान्दोग्य के कुछ प्रमाण प्रस्तुत करते हुए लिखा है-''और वे मुक्त जीव स्थूल शरीर छोड़कर सङ्कल्पमय शरीर से आकाश में, परमेश्वर में विचरते हैं।'' सत्यार्थप्रकाश समुल्लास सप्तम, पृ० 157-158, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका-मुक्ति विषय भी द्रष्टव्य है।

सन्त जी को एक स्थान पर न रहने का डर सता रहा है। महाराज छान्दोग्योपनिषद् का अष्टम प्रपाठक भी कभी देख लिया होता, तो यह शङ्का न होती। तद्यथा-

'य इहात्मानमनुविद्य व्रजन्त्येतांश्च सत्यान् कामांस्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति' छा० 8.1.6

स्वामी सत्यानन्द (रामशरणम् वाले) कृत हिन्दी अनुवाद ''उन मुक्तात्माओं का सारे लोकों में स्वतन्त्र संचार हो जाता है, ये सर्वत्र निर्बाध हो जाते हैं।'' इसका शाङ्करभाष्य-

''अथ येऽन्य इह लोक आत्मानं शास्त्राचार्योपदेशमनुविद्य स्वात्म-संवेद्यतामापाद्य व्रजन्ति यथोक्तांश्च सत्यान्कामांस्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति, राज्ञ इव सार्वभौमस्येह लोके।''

महाराज एक स्थान पर रहने वाले जानने हैं तो इस प्रसङ्ग से पूर्व की कुछ पंक्ति पढ़वा लीजिएगा। साथ ही कुछ संशय फिर भी रह जाए तो **स यदि पितृलोककामी....। अथ यदि मातृलोककामी....। यं यं कामयते सोऽस्य सङ्कल्पादेव समुत्तिष्ठति तेन सम्पन्नो महीयते** छा० 8.2.1-10 को उक्त भाष्यों के साथ देख लें।

रही बात मुक्ति के काल की, पहले प्राप्त कीजिए तभी पता चल जाएगा। यदि जिज्ञासा ही है तो परान्तकाल की गणना कर लें और मुण्डक देख लेना।

सन्त रामपाल जी ने स्वयं भ्रान्त होकर भ्रमजाल फैलाने का मानो एकाधिकार प्राप्त कर लिया है। तभी तो कहते हैं कि उनके अतिरिक्त ईश्वर नाम देने/उपदेश का किसी को अधिकार नहीं। सन्त जी यदि पूर्वाग्रहमुक्त हो पूर्वापर प्रसङ्गपूर्वक विचार करेंगे तो महर्षि-मन्तव्य वेद उपनिषद् के अनुकूल तो प्रतीत होंगे ही साथ ही भ्रान्ति भी मिट जाएगी।

- डॉ. वेदपाल

''जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मतमतान्तर के आग्रह से रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।''

- महर्षि दयानन्द सरस्वती

कांच के घर में बैठकर कबीरपंथियों द्वारा महर्षि दयानन्द पर पत्थर फेंकना

प्रस्तुतकर्ता- विरजानन्द दैवकरणि
पुस्तकाध्यक्ष परोपकारिणी सभा, अजमेर

विचारहीन मनुष्य कई बार भूल जाता है कि जो वह दूसरों पर पत्थर फेंक रहा है, वह खुद कांच के महल में बैठा है। यही हाल कबीरपंथी रामपाल दास जी और उनके चेलों का है। वे लक्ष्य बनाकर अभद्र भाषा और असभ्य तरीके से आर्यसमाज के संस्थापक और समाज सुधारक महर्षि दयानन्द की छवि को धूमिल करने का प्रयास करते रहते हैं। रामपाल दास प्राय: यह आरोप लगाता है कि ''महर्षि दयानन्द ने पूरे सत्यार्थ प्रकाश में किसी की भी छवि को क्षमा नहीं किया है। हमें अपने लाल (कविर्देव=कबीर) पर पूर्ण विश्वास है, भले ही महर्षि दयानन्द जी ने उसे कौड़ी कहा है।'' (देखें विज्ञापन, दैनिक भास्कर 21/12/04)।

श्री रामपाल दास यह भूल रहे हैं कि महर्षि से कई सौ वर्ष पूर्व वे सारे खंडन सन्त कवि कबीर घोर अप्रिय, कटुतम और कठोरतम भाषा में कर चुके हैं। अपितु महर्षि दयानन्द ने तो नारी जाति को शिक्षा और धार्मिक अधिकार देकर उनका सम्मान बढ़ाया है,जबकि सन्त कवि कबीर ने नारी वर्ग की जी भर-भर कर निन्दा की है। सन्त कबीर ने अपने काव्य में बेटी, बहन, माता, पत्नी, मुस्लिम, हिन्दू , उनके धर्मग्रन्थ, पूजा-उपासना पद्धति किसी को क्षमा नहीं किया। महर्षि दयानन्द के समय समाज में पाखंड, अज्ञान, अशिक्षा, अन्धविश्वास का बोलबाला था। कुरीतियों ने समाज को दूषित कर रखा था। धर्म के नाम पर जनता का शोषण किया जाता था। मिथ्या चमत्कारों के नाम पर लोगों को बहकाया जाता था। यह सब देखकर महर्षि घर-परिवार छोड़ कर जनहित के लिए समाजिक क्षेत्र में आये। उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं था। महर्षि दयानन्द ने मिथ्या चमत्कारों अन्धविश्वासों, पाखंडों, कुरीतियों के सच्चाई को समझाने की भावना से भद्र भाषा में सत्यार्थ प्रकाश लिखा। जन-जागरण करना उनका उद्देश्य था। कांच के महल में बैठे कबीरपंथी लोग क्रान्तिकारी समाज सुधारक, वेदों के विद्वान्, योगी, बाल ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द पर किस मुंह से आरोप लगाते हैं?

कबीरपंथी कबीर को उनकी भावना के विरुद्ध उनको भगवान् कहते हैं। अब उनकी भावना और भाषा के उदाहरण देखिए-

1. सारी नारी जाति नरक का कुंड

(क) नारी नरक का कुंड है-
'नारी कुंड नरक का, बिरला थंभै बाग।'
(कबीर ग्रन्थावली पृ. 217)

(ख) नारी आग की लपट के समान है-
'एक कनक अरु कामनी,
दोऊ अगनि की झाल।' (वही, पृ. 126)

(ग) नारी जहरीला फल है-
'एक कनक अरु कामनी,
विषफल कीए उपाइ।' (वही, पृ. 216)

(घ) नारी सांप से भी जहरीली है-
नारी की झांई परत अंधा होत भुजंग।
कबीरा तिन की का गति जो नित नारी के संग ॥
(वही, पृ. 216)

(ङ) तीनों लोकों की नारियां नागिन हैं-
कामणि काली नागणि तीनों लोक मंझारि ।
(वही, पृ. 124)

(च) नारी भक्ति और मुक्ति की नाशक है-
नारी नसावै तीन सुख, जा नर पासैं होइ ।
भकति मुकति निज ग्यान मैं,
पैसि न सकइ कोई ॥ (वही, पृ. 216)

अर्थ- जो नर नारी के पास रहता है उसके तीन सुख नष्ट हो जाते हैं-भक्ति, मुक्ति और ज्ञान । वह मनुष्य इन सुखों को नहीं पा सकता। क्या नारी को मुक्ति नहीं मिल सकती? यदि नहीं तो उसको मन्त्र देने का पाखण्ड क्यों ? स्त्री के पास रहने से सुखों का नाश क्यों होगा, पुरुषों के पास रहने से क्यों नहीं ? यह सारी नारी जाति के साथ भेदभाव नहीं तो और क्या है ?

2. अपनी भी पत्नी की निन्दा

(ज) अपनी पत्नी से भी नरक मिलेगा-

''नारी पराई आपणी,
भुगत्या नरकहिं जाई'' (वही, पृ0 219)

ऋषि दयानन्द के मत से पत्नी घर की स्वामिनी है। वह वंश को आगे बढ़ाती है, सृष्टि का अनिवार्य अंग है। सभी की वह जननी है। उसकी पूरी जाति को कोसना, अपशब्द कहना, भेदभाव करना, अपना दोष भी उसी पर डालना पूरी नारी जाति का अपमान है। यह कहां की मानवता है ? यदि ऐसी बात है तो अपने गुरु के आदेश का पालन करते हुए किसी भी कबीरपंथी को विवाह नहीं करना चाहिये, क्योंकि उनके परमात्मा कबीर के अनुसार वह उस विवाह से नरक में जायेगा ।

3. मुसलमानों की आलोचना और अपशब्दों का प्रयोग-

सन्त कबीर ने इस्लाम की कटु आलोचना की है और खुदा की भी, उनके अनुयायियों की, कुरान व नमाज आदि उपासना पद्धति की कटु शब्दों में निंदा की है। कुछ उदाहरण देखिए-

(क) खुदा को बहरा और मुसलमानों को बांग देने वाला अर्थात् मुर्गा कहना

कंकर - पाथर जोरी कै, मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।
(पृ0104)

'महजिद भीतर मुल्ला पुकारै,
क्या तेरा साह बहरा है ।'

(ख) मस्जिद में नमाज पढ़ने वाला मुल्ला झूठा है-

'कहै कबीर यह मुलनां झूठा।
राम-रहीम सबनि मैं दीठा।' (पद 60)

'मुलनां बंग देई सुर जांनी।
आप मुसल्ला बैठा तानी।' (रमैनी 2)

मुसलमानों को निन्दा में मुसल्ला कहा है। इसी तरह उनकी मस्जिद, कुरान, सुन्नत आदि का भी उपहास किया है।

(ग) नमाज भी झूठी और व्यर्थ है-

'यह सब झूठी बंदगी, विरिथा पंच नवाज।'
(पृ0 38)

'पूजा करो न नमाज गुजारौं...न माह रमजान।'
(पृ0 73)

(घ) काजी, मुल्ला सब भ्रमित करते हैं-

'काजी मुलां भ्रमिया, चल्या दुनीं कै साथि।'
(पृ0 221)

(ङ) कुरान को व्यर्थ कहना-

'कुरानां कतेबां अस पढ़ि- पढ़ि,
फिकरि या न जाइ।' (पृ0 92)

' छाड़िकतेब राम भजु बौरे।' (पृ0 39)

(च) खतना करने का व्यंग्य में मजाक उड़ाना-

''जो तूं तुरक तरकनी जाया, तौ भीतरिं खतनी क्यों न कराया।''

4. आर्यों व हिन्दुओं और उनके धर्मग्रन्थों की निन्दा
(पृ0 18)

कबीरपंथियों के कथित ब्रह्म कबीर ने आर्यों व हिन्दुओं के वेदाध्ययन, पूजा पद्धति, माला जपना, तीर्थयात्रा व्रत आदि पर कटु व्यंग्यात्मक प्रहार किये हैं और सैकड़ों स्थानों पर उनकी निन्दा है। ब्राह्मणों का नाम ले-लेकर उनको अपशब्द कहे हैं। उनके धर्मग्रन्थों, वेदों, पुराणों आदि का खण्डन है और उनको व्यर्थ बताया है।

(क) आर्यों-हिन्दुओं के धर्मशास्त्रों की निन्दा-

'वेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकर न जाई।'
'वेद पढंता ब्राह्मण मारया।' (पृ0 93)
'वेद पुरान पढ़त अस पांडे,
खर चंदन जैसे भारा।' (पृ0 64)

(ख) हिन्दू पूजा-पद्धति का मजाक-
'पूजा, सेवा, नेम, व्रत गुड़ियन का-सा खेल।'

(ग) मूर्तिपूजक हिन्दुओं को
जंगली रोज (नील गाय) कहना
'हम भी पाहन पूजते, होते वन के रोज।'

(घ) कलियुगी ब्राह्मण परिवार सहित नरक में जायेगा-
'कलि का बाम्हन मसखरा......
सौ कुटुंब नरकै चला।' (पृ0 210)

5. देवी के उपासक शाक्त हिन्दुओं को घोर अपशब्द कहना

(क) देवी-उपासक अर्थात् शाक्त सूअर से भी नीच है-
'साकत ते सूकर भला, राखै सूंचा गाऊं।'
(पृ0 244)

(ख) देवी-उपासक ब्राह्मण चंडाल से भी नीचा, उसके दर्शन ही बुरे हैं-
'साषतं बांमण मति मिलै
बैसनौ मिलै चंडाल।' (पृ0 244)

(ग) देवी-उपासकों की मां कुतिया से भी बुरी-
'बैसनो की कुकरि भली,
साकत की बुरी माइ।' (पृ0 244)

(घ) देवी-उपासक गधे, गाय, रोझ जैसे पशु-
'कबीर साखत की सभा, तूं मति बैठे जाइ।
एक गुवाडै क्यों बुनै, रोझ, गदहरा, गाइ।'
(पृ0 234)

6. वैष्णव हिन्दुओं की निन्दा और उनके जन्मों को व्यर्थ कहना

बैसनो भया तो क्या भया, बूझा नहीं विवेक
छापा, तिलक बनाइ करि, दग्ध्या लोक अनेक।

7. सब हिन्दू-मुसलमानों को भोंदू कहना

'कहे कबीर चेतहु रै भोंदू,
बोलनहारा तुरक न हिंदू।' (पृ0 56)

यह सब तो सन्त कबीर की वाणी की एक बानगी है। उनकी सारी वाणी धर्मों और पन्थों के खण्डन से भरी पड़ी है और उसमें कटु शब्दों, व्यंग्यात्मक शब्दों, निन्दात्मक और अपशब्दों की भरमार है। ज्यादातर स्थानों पर तर्क को कोई महत्त्व नहीं दिया गया है, केवल अपना माताग्रह ही उभारा है। महर्षि दयानन्द ने तो सत्य-असत्य के विवेचन के लिए समीक्षा लिखी है जो तर्क और प्रमाण पर आधारित है। पाखण्ड और अंधविश्वास, अज्ञान और अशिक्षा से जनता को बचाने का निष्कामभाव से एक सत् प्रयास किया है। सत्य - आलोचना को अपशब्द कहने वाले रामपाल दास जी बतायें कि सन्त कबीर की वाणी में आये असभ्य अपशब्दों तथा किसी की छवि को क्षमा न करने वाले निन्दात्मक प्रयोगों की क्या वे अपनी पुस्तकों और विज्ञापनों में निन्दा करेंगे? क्या वे इन कटु शब्दों को कबीर की वाणी से निकाल बाहर करने को तैयार हैं ? पाठक निर्णय करें कि महर्षि दयानन्द ने सबको क्षमा नहीं किया या सन्त कबीर ने नहीं किया? ऐसे-ऐसे मिथ्या आरोप कबीरपंथी लगाते हैं।

उपर्युक्त सभी उद्धरण 'कबीर ग्रन्थावली' सम्पादक - रामकिशोर शर्मा से उद्धृत किये हैं।

[लेख उद्धृत - 'महर्षि दयानन्द तथा वेदों पर आक्षेपों का उत्तर', प्रकाशक-आर्य प्रतिनिधि सभा, हरियाणा (रोहतक) पृष्ठ 21-25]

मिथ्या चमत्कारों की आड़ में कबीरपंथियों में पाखंड का बोलबाला

– डॉ. सुरेन्द्रकुमार

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक–हरियाणा

जिस सन्त कबीर ने जीवनभर चीख–चीखकर पाखंडों, अंधविश्वासों और अवतारवाद का कठोर से कठोरतम शब्दों में खंडन किया, उसी कबीर के शिष्यों ने अपना गुरुडमवाद चलाने और आजीविका के स्वार्थ की पूर्ति के लिए कबीर को अंधविश्वासों, पाखंडों और अवतारवाद का पुतला बना दिया। शायद ही किसी अन्य गुरु के शिष्यों ने ऐसा विश्वासघात अपने किसी गुरु के साथ किया हो, जैसा कबीरपंथियों ने गुरु कबीर के साथ किया है!!

पाठकगण ! हमारे सामने कबीरपंथी श्री रामपाल दास रचित ''गहरी नजर गीता में'' ग्रन्थ का प्रथम संशोधित संस्करण विद्यमान है, जो 'बन्दी छोड़ भक्ति मुक्ति आश्रम ट्रस्ट, करौंथा, रोहतक (हरियाणा)' द्वारा प्रकाशित है। इस पर संशोधित संस्करण लिखे होने से हम यह मानकर चल रहे हैं कि पूर्व के संस्करणों में हुई त्रुटियों का परिमार्जन आदि अवश्य कर दिया होगा। पर यह क्या? पहले ही ग्रास मैं मक्षिकापात हो गया! पुस्तक का पहला वाक्य ही अशुद्ध है । पुस्तक के सबसे पहले पृष्ठ का सबसे पहला वाक्य है''पूर्ण परमात्माय नमः।''

संस्कृत भाषा का सामान्य–सा भी ज्ञान रखने वाला व्यक्ति यह समझ सकता है कि परमात्मन् शब्द का चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ''परमात्मने'' रूप बनता है,''परमात्माय'' नहीं । किन्तु महान् आश्चर्य का विषय है कि जिस व्यक्ति को संस्कृत का सामान्य का बोध भी नहीं, वह वेद और गीता जैसे गूढ ग्रन्थों के अनुवाद करने का पाखण्ड क्यों और कैसे रच रहा है !!! इसमें इतनी अशुद्धियां हैं कि उनको लेकर इन जैसी एक पुस्तक बन जायेगी।

कितनी विडम्बना है कि संस्कृत का सामान्य ज्ञान भी न रखने वाला व्यक्ति ऋषि दयानन्द जैसे वैयाकरण और वेदों के विद्वान् के भाष्य पर आक्षेप लगाता है, जो कि सारे आक्षेप अशुद्ध और भ्रामक हैं।

वास्तव में यह हरियाणा प्रान्त के सिंचाई विभाग में जूनियर इंजीनियर था। इंजीनियरिंग के अलावा इसका संस्कृत भाषा और वेदादि शास्त्रों का अध्ययन नहीं हुआ, अतः वेदादि शास्त्रों के सम्बन्ध किये जाने वाले इसके हस्तक्षेप अनधिकृत और असत्य हैं।

सिंचाई विभाग से त्यागपत्र होने के बाद रामपाल दास ने कबीर पंथ का रास्ता अपनाया। इसको पता था कि मत–मतान्तरों में चमत्कार को नमस्कार होता है,तो इसने मिथ्या चमत्कारों का मार्ग अपनाकर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और स्वयं को जगद्गुरु प्रसिद्ध कर दिया। उक्त पुस्तक में इसके परिचय में एक भक्त सोमवीर दास ने इसके कुछ चमत्कारों का उल्लेख किया है। पाठक उनको पढ़कर स्वयं उनकी सच्चाई का अनुमान लगा सकते हैं। भक्त महोदय लिखते हैं– कुत्ता मंगलवार का व्रत करता है

''एक बार आप जी (रामपाल दास जी) अपनी रिश्तेदारी में गये हुए थे। वहां आपने खाना खाते समय वहीं पर खड़े कुत्ते को रोटी डाल दी। वह कुत्ता उस रोटी को तुरन्त न खाकर उठाकर ले गया और पास में पड़े कूड़े के ढेर में दबा देता है। आपने ये सब कुछ बड़े ध्यान से देखा। अगले दिन सुबह वही कुत्ता उस कूड़े के ढेर में दबी हुई रोटी निकालता है जो सूख चुकी थी और खाने लगता है। आप जी उस समय चाय पी रहे थे। आप जी ने बड़े ध्यान से देखा और अपने रिश्तेदार को यह बात बताई। उस रिश्तेदार ने बताया कि यह कुत्ता मंगलवार के दिन रोटी नहीं खाता है। कल मंगलवार था। इसलिए

इसने इस रोटी को न खाकर कूड़े के ढेर में दबा दिया था जिसे अब खा रहा है। आप जी को गूढ़ ज्ञान का साक्षात्कार हुआ कि यह कुत्ता मनुष्य जन्म में बहुत उपवास रखता होगा जिसके कारण इसको अब भी व्रत याद हैं।''

वाह भक्त सोमवीर दास जी, आप धन्य हैं । धन्य हैं आपके गुरु महाराज और धन्य है उनकी गहरी नजर जिसने ऐसे गूढ सत्य का साक्षात्कार कर लिया। पाठकगण! कुत्ते का तुरन्त रोटी न खाना तथा उसे ले जाकर कूड़े के ढेर में दबा देना तो समझ में आता है, क्योंकि बहुत से पशु-पक्षियों में भोजन संग्रह की प्रवृत्ति देखी जाती है । इसीलिए जब वे भूखे नहीं होते तब उपलब्ध भोजन को यथासामर्थ्य संग्रहीत करने का प्रयास करते हैं । परन्तु कुत्ते के इस सामान्य स्वभाव को पूर्वजन्म के व्रत स्मरण और मंगलवार से जोड़ना पाखण्ड के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

रामपालदास के नाम उपदेश से दोंनों किडनी बिना आपरेशन के ठीक हुई

रामपाल दास के जीवन परिचय के प्रसंग से एक और संस्मरण पाठकों के विचार हेतु प्रस्तुत है-

रोहतक शहर (हरियाणा) में दस वर्ष के विक्की नामक लड़के की दोनों किडनी (गुर्दे) खराब हो गयी थी। उन्होंने सभी जगह इलाज करवाया। ठीक नहीं हुई। डॉक्टरों ने ऑपरेशन के लिए कह दिया था। उस लड़के का मामा ऑल इण्डिया हॉस्पिटल दिल्ली में डॉक्टर था। उसने उस लड़के को वहाँ ले जाने की तैयारी कर ली थी। तब लड़के की माता बहन सरोज देवी और विक्की ने आप जी से नाम उपदेश ले लिया। तब वह लड़का आपकी कृपा से बिना आपरेशन ठीक हो गया।

उक्त कथन के सत्य अथवा असत्य होने का विचार पाठकगण स्वयं करें, हम तो यहाँ बस एक बात कहना चाहते हैं कि हरयाणा सरकार अपनी जनता के स्वास्थ्य पर प्रतिवर्ष अरबों रुपये व्यय करती है। प्रयोग के तौर पर हरयाणा सरकार इस वर्ष के स्वास्थ्य बजट का सारा धन पूज्य सन्त महाराज को देकर हरयाणा की पूरी जनता के वर्ष भर के स्वास्थ्य का ठेका दे दे। यदि सन्त महाराज इस ठेकेदारी में सफल होते हैं और हरयाणा की जनता को वर्ष भर स्वस्थ रख पाते हैं तो सच मानिये यह सारा देश, देश ही क्यों सारी दुनिया उनके चरणों में झुक जायेगी और अगर वे ऐसा न कर पाये तो वे इस पाखण्ड का परित्याग करके ऋषि-महर्षियों द्वारा दिखलाया हुआ सत्यमार्ग अपनायें और उसका ही उपदेश करके राष्ट्रनिर्माण में सच्चा योगदान दें।

दो टुकड़े हुई गाय और बछड़े को गुरु कबीर ने जीवित किया

अब इस पुस्तक में सन्त कबीर के नाम पर फैलाये जाने वाले एक और पाखण्ड को सुनिये -

''सिकन्दर लोदी ने तलवार से एक गौ के दो टुकड़े कर दिये। गौ को गर्भ था और बच्चे के भी दो टुकड़े हो गये। तब सिकन्दर लोदी राजा ने कहा कि कबीर यदि तू खुदा है तो इस गौ को जीवित कर दे, अन्यथा तेरा सिर भी कलम कर दिया जायेगा। साहेब कबीर ने एक बार हाथ गौ के दोनों टुकड़ों को लगाया तथा दूसरी बार उसके बच्चे के टुकड़ों को लगाया। उसी समय दोनों माँ-बेटा जीवित हो ग ये । साहेब कबीर ने गौ से दूध निकालकर बहुत बड़ी डेग बाल्टी भर दी तथा कहा- गऊ अपनी अम्मा है, इस पर छुरी न मार।''

सन्त कबीर ने मृत गुरु को जिंदा कर दिया

पुस्तक के पृष्ठ 350 पर आगे लिखा है- ''सिकन्दर लोदी ने गुरु श्री रामानन्द जी का तलवार से सिर कलम कर दिया था। साहेब ने उसे जीवित कर दिया।''

सामान्य-सा विवेक रखने वाला व्यक्ति भी समझ जायेगा कि उक्त घटनाओं में सत्यता लेशमात्र भी नहीं हो सकती। यदि सन्त कबीर में इतना सामर्थ्य था कि उन्होंने टुकड़े-टुकड़े हुए गौ और उसके बछड़े तथा रामानन्द जी को जीवित कर दिया तो गौ को माँ मानने

वाले कबीर जी ने उस मातृहन्ता तथा गुरुहन्ता सिकन्दर लोदी का सर्वनाश क्यों नहीं किया ?

श्री रामपाल दास चमत्कार करके दिखायें

पाठकजन! गुरु रामपाल दास महाराज भी तो नाम दान देकर अनेक चमत्कार करते हैं। ऊपर वाली घटना को प्रमाणित करने के लिए वे दुर्घटना में कटे किसी व्यक्ति के अंगों को सबके सामने वैसे ही जोड़ दें जैसे कबीर जी ने गौ, बछड़े तथा रामानन्द जी का शरीर जोड़ दिया था। इससे ऊपर वाली घटनायें भी प्रमाणित हो जायेंगी और हम सब उनके भक्त बन जायेंगे ।

कबीर साहेब ने अपने लड़के और 15 दिन से मृत शेख की लड़की को कब्र से निकाल कर जीवित किया

आगे पृष्ठ 350 पर महाराज ने मृतक लड़के कमाल को जीवित करने का कमाल लिखा है । पृष्ठ 351 पर तो यह कमाल तब और भी बढ़ जाता है जब साहेब कबीर जी 15 दिन से कब्र में रखी शेख की लड़की को जीवित कर देते हैं।

साहेब जी! आप भी तो तत्त्वदर्शी हैं। कितने ही व्यक्ति, अपने मृत प्रियजनों की एक जीवित झलक के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर करने के लिए तैयार हैं । आप उन्हें कुछ समय के लिए ही सही, जीवित कर सकते हैं क्या?

सन्त कबीर ने भैंसे से चारों वेदों के मंत्र संस्कृत में बुलवाये, फिर हिन्दी अनुवाद किया

पाठकजन, पृष्ठ 198 पर एक और कमाल पढ़िए-

''भण्डारे का समय हुआ। दो ब्राह्मण (पण्डित) वेदों के मन्त्र सुनाने के लिए परीक्षा करने के लिए भण्डार के मुख्य द्वार पर खड़े हो गये तथा वेदमन्त्र सुनाने की परीक्षा लेकर भण्डारे में प्रवेश करवा रहे थे । साहेब कबीर भी पंक्ति में खड़े अपनी बारी का इन्तजार कर रहे थे। जब साहेब कबीर की बारी आयी तो उन्होंने उसी समय एक पास में घास चर रहे भैंसे को पुकारा - ए भैंसा! इधर आओ। इतना कहना था कि भैंसा दौड़ा-दौड़ा आया तथा साहेब कबीर के चरणों में शीश झुकाकर उनके आदेश की प्रतीक्षा करने लगा। तब साहेब कबीर ने उस भैंसे की कमर पर हाथ रखकर कहा कि - हे भैंसा चारों वेदों का एक-एक मन्त्र सुनाओ। साहेब का कहना था कि उसी समय भैंसे ने शुद्ध संस्कृत भाषा में चारों वेदों के एक-एक मन्त्र कह सुनाये। फिर साहेब कबीर ने कहा भैंसा इन श्लोकों का हिन्दी अनुवाद भी करो। कहीं पण्डित जन यह ना सोच बैठें कि भैंसा हिन्दी नहीं जानता था। वह संस्कृत के साथ हिन्दी भी जानता था। भैंसे ने साहेब कबीर की शक्ति से चारों वेदों के एक-एक मन्त्र का हिन्दी अनुवाद भी कर दिया।''

वाह रे वाह, कबीर जी ने अपनी शक्ति से भैंसे को तो वेद के शुद्ध मन्त्रोच्चारण और उसके हिन्दी अनुवाद करने की शक्ति प्रदान कर दी पर 'गहरी नजर गीता में' जैसे ग्रन्थ को लिखने वाले अपने उत्तराधिकारी भक्तजन को संस्कृत के सामान्य बोध से भी वञ्चित रखा।

पाठकगण, रामपाल दास की ''गहरी नजर गीता में'' पुस्तक के कुछ उदाहरण ही आपके सामने प्रस्तुत किये गये हैं। यह ग्रंथ ऐसे ही अनेक पाखण्डपूर्ण प्रसंगों से भरा पड़ा है । कथित जगद्गुरु बनने के लिए इस प्रकार समाज में अज्ञान और पाखंड फैलाकर लोगों को भ्रमित किया जा रहा है। सभी प्रबुद्धजनों से हमारा निवेदन है कि अपनी विवेक-बुद्धि के दीपक को प्रज्वलित करें। स्वयं प्रकाशित होवें तथा औरों को भी प्रकाशित करें ताकि समाज को अज्ञान और पाखंड से बचाया जा सके।

सन्त कबीर लिखते हैं, 'मैं भगवान् नहीं,भगवान् का दास एक इन्सान हूं'

- **डॉ. सुरेन्द्रकुमार,** संरक्षक
परोपकारिणी सभा अजमेर

सन्त कबीर ने अपने काव्य में स्पष्ट शब्दों में घोषणा की है कि **मैं भगवान्, परब्रह्म या ब्रह्म नहीं हूं। मैं तो भगवान् के दास का भी दास इंसान हूं। कबीर के अनुयायियों ने पहले कबीर के आदेशों-निर्देशों, उपदेशों के विरुद्ध उनको भगवान् घोषित किया फिर धीरे-धीरे खुद को भी स्वयंभू भगवान् घोषित कर दिया।** देश में ऐसे अनेक लोग कबीर के अनुयायी कहकर स्वयंभू भगवान् और गुरु बन बैठे हैं और कबीर के नाम पर अपना गुरुडम चलाते रहे हैं तथा चला रहे हैं। आज भारत में कबीर के नाम पर दो दर्जन से अधिक पन्थ चल रहे हैं और सब अपनी अलग-अलग ढपली बजा रहे हैं। गांव करौंथा (जिला रोहतक, हरियाणा) और बरवाला (जिला हिसार) से उखड़ने के बाद अपने जन्मस्थान हरियाणा के गांव धनाना (जिला सोनीपत) में आश्रम बनाकर बैठे कबीरपंथी रामपाल दास ने भी अब अपने को भगवान् और गुरु घोषित कर दिया है। साधारण जनता उनके दावे और मिथ्या चमत्कारिक बातें सुनकर भावुकता में आकर उनके झांसे में आ जाती है।

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने सत्य के वास्तविक स्वरूप को बतलाने के लिए लिखे अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में सन्त कबीर की फूलों से जन्म होने सम्बन्धी मिथ्या कथा को असत्य और असंभव बताया है। यह संभव ही नहीं है कि कोई इंसान फूलों के पौधे से पैदा हो। यह मिथ्या कहानी सन्त कबीर ने नहीं बनायी थी अपितु उनके नाम पर अपनी जीविका चलाने वाले चेलों ने बाद में चलायी है। इस सत्य कथन से चिढ़कर हरियाणा के कबीरपंथी श्री रामपाल दास और उसके चेलों ने बदले की भावना से सोशल मीडिया और अपनी पुस्तकों में महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज की अभद्र भाषा और गंदे तरीकों से आलोचना करना अपना लक्ष्य बनाया हुआ है। वे मानते हैं कि हरियाणा में जब तक आर्यसमाज का प्रभाव रहेगा तब तक तुम्हारा पाखंड जड़ नहीं जमा पायेगा, अतः आर्यसमाज के संस्थापक और पवित्र जीवन वाले योगी और समाज सुधारक महर्षि दयानन्द को मिथ्या और गंदी बातें लिखकर बदनाम करो। अल्पपठित लोग बहक जायेंगे और तुम्हारे चेले बन जायेंगे।

स्वयं सन्त कबीर ने जीवनभर ऐसे-ऐसे अन्धविश्वासों एवं पाखण्डों के विरुद्ध घोर संघर्ष किया था। समाज से कुरीतियों को मिटाने का प्रयास किया। अपनी तीखी वाणी द्वारा उनका कटु-से-कटु शब्दों में खण्डन किया। विडम्बना यह है कि उन्हीं कबीर के नाम पर तरह-तरह के पाखण्ड और अंधविश्वासपूर्ण मत एवं चमत्कार फैला दिये गये हैं। भोले लोगों को अपने मत में फांसने के लिए कबीर के विषय में अनेक प्रकार की अविश्वसनीय चमत्कारपूर्ण कहानियां चला दी। ये सब कबीर के आदेशों-निर्देशों और उपदेशों के विपरीत हैं। आइये, देखें कि कबीर ने अपने जीवन-परिचय और मन्तव्यों के बारे में अपनी वाणी में स्वयं क्या-क्या लिखा है और उसके कथित चेले उनके आदेशों-निर्देशों के विपरीत चलकर क्या-क्या आजीविका चला रहे हैं।

माता, पिता और गुरु का सबसे बड़ा अपमान पुत्रों एवं शिष्यों द्वारा उनकी आज्ञा न मानना होता है। सन्त कबीर को ईश्वर, भगवान्, ब्रह्म, परब्रह्म कह-कहकर उनकी आज्ञा की अवहेलना जितनी उनके कथित शिष्यों ने अपने हाथों स्वयं की है, शायद, उतनी अवहेलना किसी सन्त कवि की नहीं की गयी है। आइये, उस

अवहेलना से कबीर के ही शब्दों में पाठकों को अवगत कराते हैं–

कबीर का जीवन परिचय

हिन्दी- साहित्य में, निर्गुण-निराकार परमात्मा के उपासक सन्त कवियों में प्रमुख कवि के रूप में प्रसिद्ध कबीर का जन्म और जीवन सामाजिक दृष्टि से उपेक्षापूर्ण रहा। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर इतना निश्चित है कि वे सिकन्दर लोदी के समकालीन थे। हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक एवं इतिहासकार पं. श्यामसुन्दर दास, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर का जन्म सम्वत् 1456 (सन् 1399) में माना है। भला, जो चौदहवीं शदी में उत्पन्न हुआ वह भगवान् कैसे हो सकता है? क्या इससे पहले दुनिया में भगवान् नहीं था? तो तब दुनिया कैसे चलती थी और कौन चलाता था? कबीर अपनी वाणी में स्वयं को इंसान और निराकार भगवान् के दास का भी दास कहते-कहते थक गये, फिर भी पेटपूजा के लिये स्वार्थी अन्धभक्तों ने सन्त कबीर को, कबीर की इच्छा के विरुद्ध जबरदस्ती भगवान् घोषित प्रसिद्ध कर दिया।

इनके जन्मस्थान के विषय में भी विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ काशी को, कुछ मगहर को तो कुछ जिला आजमगढ़ के बेलहरा गांव को स्वीकार करते हैं। इनके जन्म विषय में आता है कि कबीर एक विधवा ब्राह्मणी की सन्तान थे। उसने लोकलाज-वश इनको काशी के लहरतारा नामक तालाब के निकट फेंक दिया। नीरु और नीमा नामक एक जुलाहा दम्पती को ये मिल गये और उन्होंने अपने घर लाकर इनका पालन-पोषण किया। उन्हीं के आधार पर कबीर का जुलाहा परिवार और उनका जुलाहा व्यवसाय का माना जाता है।

1. कबीर का स्वघोषित वंश एवं जाति

विशेष तथ्य यह है की सन्त कबीर ने अपनी काव्य रचनाओं में अनेक स्थलों पर अपने वंश और परिवार का परिचय स्वयं दिया है। वे गृहस्थ थे तथा जुलाहे का काम करते थे। वे अपने को स्वयं 'जुलाहा' कहते हुए लिखते हैं कि मैं पूर्वजन्म में ब्राह्मण था किन्तु ओछे कर्मों के कारण परमात्मा ने मुझे 'जुलाहा' बना दिया। अर्थात् वे परमात्मा नहीं, जुलाहा जाति के मनुष्य थे। संक्षेप में कबीर के ही कहे कुछ वचन देखिए--

(क) तू ब्राह्मण मैं कासी का जुलाहा,
चीन्हि न मोर गियाना ।
पूरब जनम हम ब्राह्मण हते,
ओछें करम तप हीनाँ ।
रामदेव की सेवा चूका।
पकरि जुलाहा कीन्हा ।
(कबीर ग्रन्थावली, पद 250)

अर्थात्-तुम ब्राह्मण हो और मैं काशी का 'जुलाहा' हूँ। तुम मेरे ज्ञान को नहीं समझना चाहोगे (क्योंकि मैं छोटी जाति का हूँ) पहले जन्म में मैं ब्राह्मण था किन्तु मेरे ओछे कर्म थे और तप से रहित था, परमात्मा की सेवा-उपासना करने से मैं चूक गया। इसलिए कर्मफल में बांधकर मुझे ईश्वर ने 'जुलाहा' बना दिया।

(ख) 'ओछी मति मेरी जाति जुलाहा ।'

(ग) 'जाति जुलाहा मति को धीर,
हरषि हरषि गुण रमैं कबीर।' (पद 124)

(घ) 'कहै कबीर जुलाहा।' (पद 134)

कबीर लिखते हैं कि वे जुलाहा का व्यवसाय भी करते थे और गृहस्थ थे। निराकार 'राम' नामक परमात्मा की भक्ति के मार्ग पर चलने के बाद वे अपने व्यवसाय में कम ध्यान देते थे जिससे उनकी माता दु:खित होकर रोने लगती थी। कबीर अपनी कविता में अपनी माता की दशा का स्वयं वर्णन करते हैं–

(ङ) तननां बुननां तज्यौ कबीर।
राम नाम लिख लियौ सरीर ।
मुसि-मुसि रौवे कबीर की माई ।
ए बारिक कैसे जीवहिं खुदाई । (पद 22)

अर्थात् निराकार राम के भक्त और उपासक कबीर

जब बुनाई का कार्य नहीं करते थे, तो उनकी माता बिलख-बिलख कर रोती थी कि इस बालक का जीवनयापन कैसे होगा?

कबीर की पत्नी भी थी। उनकी पत्नी का नाम 'लोई' था। लोई से उनको दो सन्तानें उत्पन्न हुईं, पुत्र का नाम कमाल और पुत्री का नाम कमाली था। कबीर का गृहस्थ सुखी नहीं रहा। वे पत्नी से भी असन्तुष्ट थे और पुत्र से भी। उन्होंने पत्नी को त्याग दिया था और पुत्र के द्वारा अपने वंश को नष्ट हुआ, कहा। कबीर की वाणी में उनकी यह पीड़ा इस प्रकार मिलती है-

(च) जादि का भाई जनमियां, कहूं न पाया सुख

(छ) बूड़ा वंश कबीर का, उपज्यों पूत कमाल।
हरि कौ सुमिरन छांड़ि कै, घर लैं आया माल॥

(ज) अपनी पत्नी की निन्दा करते हुए उसको त्यागने के बारे में लिखते हैं-

भरी तो हम भी करी, कीया नहीं विचार।
जब जानी तब परिहरि, नारी बड़ा विकार॥

अर्थात्-हमने बिना विचार किये पत्नी कर ली किन्तु जब उसको समझा, तो मैंने उसे त्याग दिया, क्योंकि नारी बड़ा बिगाड़ है।

2. कबीर अशिक्षित थे

कबीर ने शिक्षा प्राप्त नहीं की थी, या यों कहिये कि उस युग में उनको किसी ने पढ़ाया नहीं। बोलचाल की भाषा में उन्होंने अपनी वाणी सुनाई जिसे दूसरों ने लिपिबद्ध किया था। यह जानकारी देने हेतु उनका यह दोहा प्रसिद्ध है-

''मसि कागद छुओ नहीं। कलम गहयौ नहिं हाथ।''

3. कबीर रामानन्द के शिष्य थे

कबीर ने भक्ति की शिक्षा प्राप्त करने के लिए रामानन्द को अपना गुरु बनाया था-

(क) ''काशी में हम प्रगट भये, रामानन्द चेताये।''

(ख) ''कहै कबीर दुविधा मिटी,
गुरु मिलिया रामानन्द।''

4. दूसरों के समान मेरी मनुष्य जाति है

सन्त कबीर स्वयं घोषणा करते हैं कि मैं ईश्वर या ब्रह्म नहीं हूं, मैं तो ईश्वर का दास-सेवक हूं और मेरी मनुष्य जाति है। मैंने अन्य मनुष्यों के समान माता-पिता से जन्म लिया है और उन्हीं की तरह मरूंगा अर्थात् वे नाशवान् हैं। ईश्वर या ब्रह्म न जन्मता है, न नाशवान् होता है। उनकी कुछ पंक्तियां देखिए-

(क) ''पानी केरा बुदबुदा इसी हमारी जाति।''
(पृ0 284)

हमारी मनुष्य जाति पानी के बुलबुले के समान किसी भी क्षण नष्ट हो जाने वाली है।

5. कबीर भगवान् या ब्रह्म नहीं मनुष्य थे

कबीर ने अपनी वाणी में कहीं भी अपने को ब्रह्म या परमात्मा या भगवान् नहीं लिखा। उन्होंने सब जगह स्वयं को स्पष्ट शब्दों में एक साधारण मनुष्य- शरीरधारी भक्त या दास के रूप में वर्णित किया है -

(क) ''कबीर चेरा सन्त का, दासनि का परदास।''
(पृ0 298)

कबीर तो सन्तों का चेला है और परमात्मा के दास का भी दास है अर्थात् एक छोटा-सा भक्त है।

कबीर निराकार भगवान् के उपासक भक्त थे। उन्होंने अपने भगवान् का प्रिय नाम 'राम' रखा था। ईश्वर के बाकी सब नाम इसी के पर्यायवाची हैं। यही 'राम' उनकी भक्ति का आधार है, इसी से उनको मुक्ति की आशा है, इसी राम नामक भगवान् के वे दास हैं-

(क) निरगुण राम जपहु रे भाई,
अविगत की गति लखी न जाई। (पद 49)

(ख) कहै कबीर मेरे राम अधार। (पद 84)

(ग) दास कबीर राम गुन गावै। (पद 147)

कबीर सृष्टि के रचने वाले भगवान् को ही अपना हितैषी मानते हैं--

(च) 'कबीर सिरजनहार बिन,
मेरा हितु न कोई।' (पृ0 306)

कबीर सृष्टि का रचनेवाला निराकार भगवान् को ही मानते हैं, स्वयं को नहीं। खुद को तो वे उसका उपासक मानते हैं --

(छ) पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।
कहिबे कुं शोभा नहीं देख्या ही परवान॥
(पृ0 150)

अर्थात् जिसको परब्रह्म कहते हैं उसके तेज का अनुमान ही किया जा सकता है, अर्थात् वह प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता। उसकी शोभा को वाणी के द्वारा भी वर्णित नहीं किया जा सकता। उस भगवान् का अपने हृदय में दर्शन करना अर्थात् अनुभूति करना ही उसके होने का प्रमाण है।

इस प्रकार कबीर स्वयं को ब्रह्म या परब्रह्म नहीं मानते। वे स्वयं को निराकार भगवान् से पृथक् एक भक्त मात्र मानते हैं। वे स्वयं उसके गुण गाते हैं और दूसरों को भी प्रेरणा देते हैं । अतः स्पष्ट है कि कबीर स्वयं ब्रह्म नहीं हो सकते । उनके चेलों ने अपने स्वार्थ के लिए कबीर के बारे में अज्ञान और मिथ्या चमत्कार फैलाया है।

6. कबीर का भगवान् सूक्ष्म, निराकार एवं अदृश्य है

कबीर ने अनेक रचनाओं में अपने पूज्य भगवान् के स्वरूप का भी वर्णन किया है और उसे सूक्ष्म, निराकार, इन्द्रियों से अदृश्य, हृदय में स्थित और अनुभूति करने योग्य, अन्तर्यामी, सर्वत्र व्यापक बताया है। वह साकार नहीं है। वह कभी आकार या अवतार या शरीर ग्रहण नहीं कर सकता। वही इस सृष्टि का या ब्रह्माण्ड का रचने वाला है। इस प्रकार सन्त कबीर न तो स्वयं को ईश्वर मानता है, न ईश्वर का अवतार होना मानता है। कबीर तो उस निराकार ईश्वर की अपने हृदय में भक्ति करता है, कोई मूर्ति बनाकर उसकी पूजा नहीं करता क्योंकि उनका ईश्वर तो सर्वव्यापक है-

(क) कस्तूरी कुंडली बसै, मृग ढूंढै वन मांहि ।
ऐसे घटि - घटि राम है, दुनिया देखै नांहि ।।
(पृ0 296)

जैसे मृग की नाभि में कस्तूरी रहती है ऐसे ही प्रत्येक प्राणी के हृदय में भगवान् अन्तर्यामी रूप से बसे हैं। नासमझ दुनिया उसे साकार रूप में बाहर ढूंढ़ती है। इस तरह वह भटकती रहती है। कबीर के जो चेले उसकी मूर्ति बना, ईश्वर कहकर पूजते हैं, कबीर के सिद्धान्त के अनुसार वे भटके हुए हैं -

(ख) राम है घटि - घटि रह्या समाई।
(पृ0 241)

(ग) ''अविगति अन्तरि प्रगटै'' (पृ0 164)

वह घट-घट में समाया, अज्ञेय, अदृश्य, ब्रह्म अन्तर्यामी रहकर हृदय में ही प्रगट होता है ।

(घ) हिरदा भीतर हरि बसै, तूं ताहि सौ ल्यौ लाइ ॥
= भगवान् हृदय के भीतर बसते हैं, हे मनुष्य! तू उसी में ध्यान लगा । अर्थात् मूर्ति पूजा में नहीं।

(ङ) ''निराकार प्रभु आदि निरंजन। (पद174)

अर्थात्-कबीर उसी प्रभु का भक्त है जो सृष्टि के आदि से है। जो अदृश्य, सूक्ष्म और निरंजन-विषयविकार, अज्ञान आदि से रहित है। कबीर के इस वचन से यह प्रमाणित होता है कि चेलों द्वारा प्रचारित चौदहवीं शताब्दी में उत्पन्न हुआ सन्त कबीर प्रभु या ब्रह्म नहीं है।

7. ब्रह्म या परमात्मा एक है, अनेक नहीं

उक्त निराकार ब्रह्म या परमात्मा को कबीर ने अखिल ब्रह्माण्ड में एक माना है, दूसरा कोई ब्रह्म नहीं है। न कबीर स्वयं ब्रह्म हैं और न स्वयं को उसका अवतार कहते हैं। कबीर ने उस परमात्मा को अनेक पर्यायवाची नामों से स्मरण किया है, जैसे-ब्रह्म, परब्रह्म निरंजन, राम, सारंगपाणि, राघव, त्रिभुवनपति, कृष्ण, हरि, राजा, पालनहार, अलख, अविनाशी, ठाकुर आदि। वे एक ही ब्रह्म के नाम हैं।कबीर स्पष्ट शब्दों में कहते हैं-

वे स्पष्ट कहते हैं कि वे परमात्मा को एक ही मानते

हैं। जो दो या अधिक परमात्मा कहता है वह नरक में जायेगा। एक से अधिक भगवान् मानने वाले उसको समझते ही नहीं–

(क) हम तौ एक–एक कर जाना ।
दोइ कहै तिनहीं को दोजख,
जिन नाहिंन पहचाना ॥ (पद 55)

(ख) एक राम देखा सबहिन में,
कहै कबीर मन माना। (पद 52)

(ग) कहै कबीर....पुरिष एक अबिनाशी। (पद 1)

8. कबीर ने मन्त्र देने को पाखंड कहा है

सन्त कबीर ने अपनी वाणी में जन्त्र–मन्त्र, पूजा, तीर्थ, व्रत, मालाजाप आदि को मिथ्या, पाखंड और निष्फल माना है और उनका तीव्र शब्दों में खंडन किया है। **दु:ख की बात तो यह है कि कबीरपन्थी लोग स्वयं को उनका अनुयायी कहते हैं और कबीर के विरुद्ध आचरण करके गुरुमन्त्र देते हैं। कबीर ने तो गुरुमन्त्र जैसी बातों का निषेध किया है।** वे स्पष्ट कहते हैं–

(क) जन्त्र–मन्त्र सब झूठ है, मति भरमै जग कोय ।
सार सबद जाने बिना, कागा हंस न होय ॥
(हिन्दी साहित्यमाला, पृष्ठ 34)

'विरह भुवंगम तन बसै, मन्त्र न लागै कोई।'
(पृ0 135)

9. कबीर के उपदेशों के विरुद्ध आचरण करने वाला पाखंडी है

कबीर की मान्यताओं के विरुद्ध आचरण करने वाले, उनके लिखे आदेशों–निर्देशों को न माननेवाले चेलों को कबीर ने स्वयं पाखंडी कहा है और उनसे दूर रहने का आदेश दिया है। अब यह बात किसी दूसरे को कहने की जरूरत नहीं–

(क) तजि पाखंड पांच करि निग्रह
तजि खोजि निरंजन सांचा। (पद 206)

(ख) पाखंड तजि–ताहि मिलै भगवान्। (पृष्ठ 238)

सन्त कबीर का ऊपर के वचनों में स्पष्ट आदेश है कि जो भगवान् को निराकार न मानकर साकार मानते हैं,जो अपने को भगवान् कहते हैं,जो मन्त्र देने की बात करते हैं,वह सब पाखंड है। ऐसे गुरुओं को और चेलों को भगवान् नहीं मिलता। वे भ्रम में पड़कर अपना और दूसरों के जीवन को बर्बाद करते हैं।

(टिप्पणी–सभी उद्धरण 'कबीर ग्रन्थावली', सम्पादक–रामकिशोर शर्मा से उद्धृत हैं।)

''भारत में ब्रिटिश प्रभुत्व स्थापित होने के बाद, ऋषि दयानन्द के साथ राष्ट्रीयता की पहली मंज़िल का उदय हुआ। १८५७ के राष्ट्रीय विद्रोह की असफलता में निहित अपमान से परितप्त भारत में उन्होंने सर्वप्रथम राष्ट्रीयता का विकास किया।''

– **कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी**

स्वामी दयानन्द जैसे महापुरुष पर नशा करने का दुर्भावनापूर्ण आरोप

– **डॉ. विवेक आर्य,** दिल्ली

कबीरपंथी रामपाल दास और उसके चेले गृहत्यागी संन्यासी और समाज सुधारक स्वामी दयानन्द सरस्वती पर द्वेष भावना से भांग सेवन करने और हुक्का पीने का दोष लगाते हैं। यह सूरज की ओर मुख करके थूकने के समान है।

पाठकों को मैं पहले जानकारी दे दूं कि निम्न घटना उस समय की है जब मूलशंकर (दयानन्द) किशोर अवस्था में घर-परिवार त्यागकर सच्चे शिव की खोज में निकले थे और भंगेड़ी साधुओं के दुष्चक्र में पड़ गए थे। उन्होंने बालक दयानन्द को बहकाया कि भांग आदि का नशा करने से सच्चे शिव के दर्शन होते हैं। यह संस्मरण स्वामी दयानन्द जी ने अपनी आत्मकथा में स्वयं लिखा है। जैसे ही उनको ज्ञान और अनुभव हुआ कि यह दुर्व्यसन है और इससे ईश्वर का दर्शन नहीं होता, अपितु मनुष्य नशे में फंसता जाता है, उन्होंने उसको त्याग दिया और जीवन में मृत्यु पर्यन्त कभी सेवन नहीं किया। बचपन के किसी अल्पकाल के दोष को जीवनभर का बताकर लोगों को बहकाना, कुटिल स्वभाव के व्यक्ति का लक्षण है। ऐसा व्यक्ति न सच्चा गुरु कहा जा सकता है, न सच्चा चेला। क्या यह बात रामपाल दास के चेले अपने गुरु पर भी जीवनभर के लिए लागू करेंगे जो आरोप उन पर सर्विस छोड़ते समय और ग्यारह साल पहले हिसार आश्रम में लगे थे?

बालक ब्रह्मचारी दयानन्द को घर से भागने के समय तक न ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान था, न वेदों का ज्ञान हुआ था। शीघ्र ही उनको बोध हुआ कि इससे शिवजी की प्राप्ति होना केवल गुमराह करना है और यह दुर्व्यसन है। उन्होंने इसे तत्काल त्याग दिया। महापुरुषों का यही लक्षण है कि असत्य का तुरन्त त्याग करना और सत्य का ग्रहण कर लेना।

पंडित लेखराम जी ने उनके जीवन संबंधी जानकारी का घूम घूमकर संकलन किया था। जिन लोगों ने स्वामी दयानन्द जी के दर्शन किए थे। वो अपने अनुभव पंडित जी को लिखवा देते थे। किसी ने अज्ञानतावश यह लिखवा दिया कि स्वामी जी हुक्का पीते थे। पंडित लेखराम जी ने इसे लिख दिया और उनका फिर एक धर्मान्ध मुस्लिम ने असमय बलिदान कर दिया। वे अपने संकलन की पुष्टि नहीं कर सके।

लेखराम जी के अधूरे कार्य को बाद में मास्टर आत्माराम अमृतसरी जी ने पूरा किया था। किसी व्यक्ति द्वारा किसी अन्य साधु के भ्रम में प्रमादवश मूल लेखक को यह गलत जानकारी दी गई थी, जिसके कारण यह गलत तथ्य स्वामी दयानन्द जी की जीवनी में जुड़ गया। किसी भी अन्य खोजी जीवनीकार ने स्वामी जी के हुक्का पीने की बात नहीं लिखी है।

स्वामी जी अगर किसी भी प्रकार का नशा करते तो उनके लेखन में नशा और मादक पदार्थ ग्रहण करने के विरुद्ध उपदेश और उनका खंडन नहीं होता।

यहां पर स्वामी दयानन्द जी के कुछ वचन प्रमाण रूप में प्रस्तुत हैं। सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जी स्पष्ट रूप से मादक पदार्थ ग्रहण करने का निषेध करते हैं--

1. मनुस्मृति का सन्दर्भ देकर स्वामी दयानन्द जी किसी भी प्रकार का नशा करने से मनुष्य की बुद्धि का नाश होना मानते हैं। ''**वर्जयेत् मधुमांसं च**'' (मनु. 2.177)

अर्थ – जैसे अनेक प्रकार के मद्य, गांजा, भांग, अफीम आदि जो-जो बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं, उनका सेवन कभी न करें। (सत्यार्थ प्रकाश, दस समुल्लास)

छठे समुल्लास में वे नशा करना राजाओं के लिए भी त्याज्य दोष मानते हैं। वे लिखते हैं- ''मादकद्रव्य सेवन=मद्य, अफीम, भांग, गांजा, चरस आदि का सेवन व्यसन है।'' आगे खाने योग्य भोजन के प्रकरण में दसवें समुल्लास में फिर आदेश देते हैं – ''**बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते**''= जो नशा करने वाले पदार्थ हैं, वे बुद्धि का नाश करते हैं। उनका सेवन कभी न करें।''

2. स्वामी दयानन्द भांग आदि मादक पदार्थ के ग्रहण

करने वाले को कुपात्र व्यक्ति कहते हैं। क्योंकि वह न परिवार, न समाज और न देश के लिए उपयोगी होता है। वह नशे में पड़कर जीवन को बर्बाद करता है। स्वामी जी लिखते हैं –

(प्रश्न)–कुपात्र और सुपात्र का लक्षण क्या हैं?

(उत्तर) जो छली, कपटी, स्वार्थी, विषयी, काम, क्रोध, लोभ, मोह से युक्त, परहानि करने वाले–ऊपर से साधु का वेश बना लोगों का यथेष्ट भांग आदि मादक द्रव्य खा पीकर बहुत सा पराया पदार्थ खाना, पुनः उन्मत्त होकर प्रमादी होना, सत्य–मार्ग का विरोध और जूठ–मार्ग में अपने प्रयोजनार्थ चलना। वैसे ही अपने चेलों को केवल अपनी सेवा करने का उपदेश करना। दुष्ट उपदेश करना आदि कुपात्रों के लक्षण हैं। (सत्यार्थ प्रकाश, एकादश समुल्लास)।

3. स्वामी दयानन्द जी यहाँ पर स्पष्ट रूप से शैव नागा आदि साधुओं के लिए किसी भी प्रकार के नशे को वर्जित कर रहे हैं। स्वामी जी द्वारा लिखित संवाद देखिए–

(खाखी) देख! हम रात दिन नंगे रहते, धूनी तापते, गांजा चरस के सैकड़ों दम लगाते, तीन–तीन लोटा भांग पीते, गांजे, भांग, धतूरा ली पत्ती की भाजी (शाक) बना खाते, संखिया और अफीम भी चट निगल जाते, नशा में गर्क रात दिन बेगम रहते, दुनिया को कुछ नहीं समझते, भीख मांगकर टिक्कड़ बना खाते, रात भर ऐसी खांसी उठती जो पास में सोवे उसको भी नींद कभी न आवे, इत्यादि सिद्धियाँ और साधुपन हम में हैं, फिर तू हमारी निंदा क्यूँ करता है? चेत बाबूड़े! जो हमको दिक्कत करेगा हम तुमको भस्म कर डालेंगे।

(पंडित) यह सब असाधु मूर्ख और गवर्गंड लोगों के हैं, साधुओं के नहीं! सुनो–'साध्नोति पराणि धर्मकार्याणि स साधुः'=

जो धर्म युक्त उत्तम काम करे, सदा परोपकार में प्रवृत्त हो, कोई दुर्गुण जिसमें न हो, विद्वान्, सत्योपदेश से सब का उपकार करे उसको 'साधु' कहते हैं। (सत्यार्थ प्रकाश, एकादश समुल्लास)

4. कुछ लोग भांग के नशे में ईश्वर भक्ति बताते हैं। उन्होंने कहा कि मद (नशा) की अवस्था में चित्त एकाग्र हो जाता है और जिस विषय की ओर चित्त आकृष्ट होता है उसी में डूबा रहता है। इसलिए इस अवस्था में जैसा अच्छा ईश्वर का ध्यान हो सकता है वैसा अन्य अवस्था में नहीं।

स्वामी दयानन्द जी श्री कन्हैयालाल इन्जीनियर, रुड़की के इसी प्रश्न का उत्तर इस प्रकार से देते हैं कि मद का नियम ऐसा ही है जैसा कि आप वर्णन करते हैं कि जिस वस्तु का ध्यान चित्त में होता है मनुष्य उसी में डूबा रहता है परन्तु वस्तुओं की वास्तविकता का ठीक ध्यान नशे में नहीं, अनुकूलता से हुआ करता है । जब हम एक वस्तु का ध्यान करते हैं और उसका सम्बन्ध दूसरी वस्तुओं के साथ करके देखते हैं और उस वस्तु और अन्य वस्तुओं में सम्पर्क स्थापित करके देखते हैं। तब उस वस्तु का ठीक ध्यान चित्त में प्रकट होता है और अन्यथा उस वस्तु का ध्यान वास्तविकता के विरुद्ध प्रकट हुआ करता है और गुणी और गुण की अपेक्षा नहीं रहती। 'इसलिए मद की अवस्था में ईश्वर का ध्यान झूठा और अवगुणों के साथ होता है '

प्रश्नकर्ता को यह उत्तर बहुत अच्छा लगा और पूर्ण सन्तोष हो गया ।

लाला साहब स्वयं मद्य,भांग नहीं पीते थे प्रत्युत उससे घृणा करते थे। उन्होंने लोगों में प्रचलित शंका को स्वयं उपस्थित करके स्वामी जी से उत्तर मांगा था ।

(पं . लेखराम कृत जीवनी, पृष्ठ 395)

स्वयं नशा करने वाला व्यक्ति अपने ग्रन्थों में कभी उक्त प्रकार से नशे का विरोध या खंडन नहीं किया करता और न नशा त्यागने की प्रेरणा देता है। स्वामी दयानन्द जी दुर्व्यसन रहित योगी और विद्वान् महापुरुष थे। ऐसे समाज सुधारक, योगी महापुरुष पर नशा करने का दुर्भावनापूर्ण और निराधार आरोप लगाते हुए आरोप लगानेवाले को और उसके प्रेरक गुरु को लज्जा आनी चाहिए। अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए किसी श्रेष्ठ पुरुष पर मिथ्या आरोप लगाना महापाप है।

लोक-लोकान्तरों में जीवसृष्टि : कुछ तथ्यपरक समाधान

- डॉ. सुरेन्द्रकुमार

संरक्षक, परोपकारिणी सभा अजमेर

सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास के अन्त में महर्षि दयानन्द ने सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि में मनुष्य आदि प्राणियों की सृष्टि के अस्तित्व का एक शतपथ ब्राह्मण का उद्धरण प्रस्तुत किया है। इस विषय पर आर्यसमाज के विद्वानों में वर्षों से परस्पर विचार-विमर्श होता आ रहा है। कई मतावलंबी आलोचक और कबीरपन्थी श्री रामपाल दास भी इस विषय पर समय-समय पर आपत्ति उठाते आ रहे हैं। इस सत्य को कहने की आवश्यकता नहीं है कि आलोचकों की भावना केवल विरोध और आक्षेप करने की है, जिज्ञासा की नहीं। यद्यपि इन सभी मतावलंबियों पर यह कहावत चरितार्थ हो रही है- 'कांच के घर में बैठकर दूसरों पर पत्थर फेंकना।' सब मत-मतान्तर स्वयं आपत्तियों से घिरे हुए हैं। फिर भी हम मानते हैं कि यह विषय विचारणीय रहा है, और आज भी है। आइये, इस बिंदु को कुछ तथ्यों के आधार पर समझने का प्रयास करते हैं ।

पहले हमें महर्षि के दिशानिर्देशों को ध्यान से पढ़कर उनका पालन करना चाहिए, नहीं तो लेखक के भाव के साथ न्याय नहीं किया जा सकता। डेढ़ -सौ वर्ष पूर्व आधुनिक हिन्दी के सर्वप्रथम ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में मूलतः गुजराती भाषा-भाषी महर्षि दयानन्द अपनी भाषा को समझने के लिए पाठकों से यह कहते हैं-

''जो कोई इस ग्रन्थकर्ता के तात्पर्य से विरुद्ध मनसा से देखेगा उसको कुछ भी अभिप्राय विदित न होगा, क्योंकि वाक्यार्थबोध में चार कारण होते हैं-आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य। जब इन चारों बातों पर ध्यान देकर जो पुरुष ग्रन्थ को देखता है, तब उसको ग्रन्थ का अभिप्राय यथायोग्य विदित होता है। .... बहुत-से हठी, दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि जो वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेषकर मत वाले लोग। क्योंकि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अन्धकार में फंस के नष्ट हो जाती है।''

लेखक का इस कथन को लिखने का अभिप्राय यह है कि हमें लेखक की भाषा के अभिप्राय को देखना चाहिए कि उसका मुख्य तथ्य क्या है, किन्तु आग्रही व्यक्ति ऐसा नहीं करते। महर्षि की भाषा को ध्यान से पढ़ने के बाद इस विषय के निम्नलिखित निष्कर्ष सामने आते हैं-

1. महर्षि ने अपना कथन ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर किया है -

महर्षि ने शतपथ ब्राह्मण का उद्धरण उद्धृत करके चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि लोकों में, केवल मनुष्य नहीं, अपितु मनुष्य आदि किसी भी प्राणी के निवास का वर्णन और उनको प्राणियों के वास का मूल कारण मानने का प्राचीन विचार प्रस्तुत किया है (शतपथ ब्राह्मण (कांड 14)। यह उनका स्वतन्त्र विचार या नवीन खोज नहीं है। जैसे कि सभी मतावलंबी अपने मत के ग्रन्थों पर विश्वास रखते हैं, उसी प्रकार महर्षि ने वैदिक ग्रन्थों पर आस्था के कारण ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रमाण देकर उस विषय को प्रस्तुत किया है । यह उनकी उस प्रतिज्ञा के अनुसार है जो उन्होंने कहा है कि ''ब्रह्मा से लेके जैमिनि मुनिपर्यन्त के विचारों को मैं मानता हूं।'' अतः इस विचार का मूल दायित्व ब्राह्मण ग्रन्थों का है, महर्षि दयानन्द का नहीं।

उपर्युक्त स्थल के अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण में अन्यत्र भी यही धारणा है कि ''इमे वै लोका विश्वसदनानि।'' (6.7.3.10). अर्थात् ये लोक-लोकान्तर संसार के प्राणियों के घर हैं।

2. महर्षि के शब्दों का यथार्थ

इस धारणा के पश्चात् अब महर्षि के शब्दों पर विचार करें कि वे क्या कहना चाहते हैं-

''प्रश्न- सूर्य, चन्द्र, तारे क्या वस्तु हैं और उनमें मनुष्य आदि सृष्टि है वा नहीं ?

उत्तर- ये सब भूगोल लोक और इसमें मनुष्य आदि प्रजा भी रहती है।'' शतपथ ब्राह्मण उसका कारण यह बताता है- **''एतेषु हीदं सर्वं वसु हितमेते हीदं सर्वं वासयन्ते,**

तद्यदिदं सर्वं वासयन्ते तस्माद् वसव इति।'' (शत. ब्राह्मण का. 14)

अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य इनका 'वसु' नाम इसलिये है कि इन्हीं मां सब पदार्थ और मनुष्य आदि प्रजा बसती है और ये ही सबको बसाते हैं। क्योंकि ये सब प्राणियों के वास के निवास करने के घर हैं और बसे रहने के कारण हैं, इसलिये इनका नाम 'वसु' है। (सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समु.)

इस अनुच्छेद में आगे चन्द्र, सूर्य आदि का पृथक् नाम न गिनाकर उनके स्थान पर 'सब भूगोल लोक' शब्दों का प्रयोग किया है। दूसरे प्रश्न के उत्तर में इनके स्थान पर 'लोक-लोकान्तरों' तथा 'लोकान्तर' शब्दों का प्रयोग किया है और लिखा है कि- 'लोक-लोकान्तरों में भी भेद होते हैं।' 'उसी प्रदेश में लोकान्तर में भी उसी जाति के अवयव भी वैसे ही होते हैं।' वैदिक ग्रन्थों के उक्त उद्धरणों तथा महर्षि के वचनों से ये निष्कर्ष सामने आते हैं-

(क) अपने वचनों में महर्षि ने पृथक् से और विशेषरूप से सूर्य का नाम लेकर यह कहीं नहीं कहा कि सूर्य में अवश्य ही मनुष्य आदि प्रजा = प्राणी रहते हैं । चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि की गणना ब्रह्माण्ड के समस्त लोक-लोकान्तरों के प्रतिनिधिरूप में है। यही कारण है कि उनके पर्याय रूप में पहले 'भूगोल लोक' कहा, फिर आगे पांच-छह बार उनकी जगह 'लोक' या 'लोक-लोकान्तर' शब्दों का प्रयोग किया है। इस सिद्धान्त को आज का विज्ञान भी स्वीकार करता है कि कुछ लोक-लोकान्तरों में प्राणिसृष्टि है। इसी सिद्धान्त को स्वीकार करके एलियंस के अस्तित्व की धारणा सामने आयी है। पृथ्वीवासी उस अन्य सृष्टि की खोज करना चाहते हैं। इसी की खोज करने के लिए आज लोक-लोकान्तरों में उपग्रह भेजे जा रहे हैं। अनेक बार प्रत्यक्षदर्शी बताते हैं कि कोई तश्तरी पृथ्वी पर उतरी है। वैज्ञानिकों का एक पक्ष इसको सत्य मानता है और उन्हें दूसरे ग्रहों से आयी कहता है। इसका अभिप्राय यह है कि दूसरे ग्रहों में अन्य मनुष्य आदि प्राणियों का वास है। महर्षि का यह भाव है जो आज के वैज्ञानिकों के मत से भी सही है।

(ख) वैदिक साहित्य में सभी लोकों का नाम 'वसु' दिया है। इसका अर्थ यह है कि ये लोक निवास के स्थान हैं और प्राणियों के वास-जीवनस्थिति के कारण हैं। यह भी विज्ञानसम्मत है कि अन्य लोकों के कारण पृथ्वी के प्राणियों को सभी आवश्यक जीवनीय परिस्थितियां और पदार्थ प्राप्त होते हैं। आज का विज्ञान यह मानता है कि लोक-लोकान्तरों के उपयुक्त वातावरण और स्थिति के कारण ही पृथ्वी और अन्य ग्रहों पर प्राणियों की उत्पत्ति और जीवनस्थिति संभव है। उनसे उपयुक्त जल, प्रकाश, वायु, वातावरण आदि मिलते हैं, जिनके आधार पर जीवन संभव है। इसी कारण ये सब लोक जीवनीय पदार्थों के स्थान हैं और वास=प्राणियों की जीवनस्थिति के हेतु हैं, मूल कारण हैं; अर्थात् कोई लोक निवास के योग्य है, कोई निवास का हेतु है, कोई जीवनीय पदार्थ प्रदान करता है; जैसे सूर्य के बिना पृथ्वी पर प्राणियों का जीवन संभव नहीं है, अतः वह पृथ्वी आदि पर प्राणियों के बसे रहने का हेतु है। प्राणियों के लिए सब लोकों का कोई-न-कोई महत्त्वपूर्ण जीवनदायक योगदान है, कोई लोक निष्प्रयोजन नहीं है। यही ब्राह्मण ग्रन्थों का और महर्षि दयानन्द का भाव है।यह कथन भी विज्ञानसम्मत है।

(ग) लोक - लोकान्तरों में मनुष्य आदि प्रजाएं-प्राणी रहते हैं। इसका अभिप्राय भी न तो यह है कि प्रत्येक लोक में प्राणी अवश्य हैं और न यह अभिप्राय है कि वे केवल मनुष्य ही हैं। जैसा कि पूर्वपंक्तियों में कहा है कि ये लोक सबके लिये 'वसु' हैं। महर्षि के शब्दों में सर्वत्र 'मनुष्य आदि' प्रयोग विशेष ध्यान देने योग्य है। वहां 'आदि' प्रयोग से उन्होंने यह संकेत दिया है कि जरूरी नहीं कि सब स्थानों पर मनुष्य ही हों। कीट से लेकर मनुष्य तक कहीं कोई प्राणी, तो कहीं कोई प्राणी हो सकते हैं।

इस कथन को हम पृथ्वी के उदाहरण से भलीभांति समझ सकते हैं। यह कहा जाता है कि पृथ्वी पर मनुष्य आदि प्राणी बसते हैं। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि पृथ्वी के कोने-कोने में सर्वत्र मनुष्य बसते हैं, जबकि रेगिस्तान में, घोर जंगलों में, दोनों ध्रुवों पर नहीं बसते। समुद्र में केवल

समुद्री प्राणी बसते हैं। कहीं-कहीं अन्य पशु, पक्षी, कीट आदि प्राणी बसते हैं। फिर भी उक्त वाक्य का प्रयोग होता है, तो उसका यही अर्थ हुआ कि कहीं कोई प्राणी, तो कहीं कोई प्राणी बसते हैं। यही लोक-लोकान्तरों या भूगोल लोक में मनुष्य आदि प्राणी बसते हैं, कहने का अर्थ है। पृथ्वी क्योंकि प्रत्यक्ष है इसलिए शंका नहीं होती। अन्य लोक परोक्ष हैं, अत: उनकी बातों को बुद्धि के चिन्तनपूर्वक समझना पड़ता है।

3. प्राचीन कथन पर आपत्ति और उसका समाधान

महर्षि दयानन्द द्वारा उद्धृत शतपथ ब्राह्मण के वचनों पर लोगों की शंका या आपत्ति आज की दो वैज्ञानिक खोजों के कारण है - एक, चन्द्रमा पर पृथ्वी यात्री जा चुके हैं, वहां सृष्टि नहीं है, जल भी नहीं है। जल नहीं है तो प्राणी भी नहीं होंगे। दो, सूर्य आग का गोला है वहां सृष्टि संभव नहीं। आइए, इन वैज्ञानिक धारणाओं और निष्कर्षों पर भी विचार करते हैं। आज की समस्या यह है कि वैज्ञानिक खोजें और उन पर आधारित निष्कर्ष बदलते रहते हैं। आगे भी बदलेंगे। जैसे-

(क) चन्द्रमा पर आज तक जल या प्राणी नहीं मिले हैं किन्तु वैज्ञानिकों ने बताया है कि वहां बड़े-बड़े गड्ढे, खाइयां और जलमार्ग हैं, जो इस बात के चिह्न हैं कि कभी वहां सरोवर या समुद्र थे। समुद्र थे तो निश्चित बात है वहां कोई-न-कोई प्राणी भी थे, और आज भी हैं; चाहे वे कीट ही क्यों न हों। इससे यह बात सिद्ध हो गयी कि कभी चन्द्रमा पर प्राणी सृष्टि रही है, भले ही आज न हो। वैदिक ग्रन्थ या महर्षि वर्तमान की बात नहीं कर रहे हैं। वे तो शाश्वतिक सृष्टि की बात कर रहे हैं। पृथ्वी पर भी यह हो सकता है कि कभी सृष्टि बिल्कुल नहीं थी और भविष्य में भी न रहे। ब्रह्माण्ड में ऐसे परिवर्तन होते रहते हैं। पृथ्वी पर सृष्टिविनाश की आशंका वैज्ञानिक अभी से प्रस्तुत कर रहे हैं। इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थों का उक्त कथन सत्य है।

(ख) जब मंगल पर पहले उपग्रह गये तो वैज्ञानिकों ने कहा कि वहां कोई जीवन-चिह्न नहीं है। नवीनतम उपग्रह गया तो वहां पानी होने के प्रमाण मिल गये। पानी मिला है तो वहां छोटे या बड़े प्राणी भी अवश्य मिलेंगे। प्राचीन साहित्य में मंगल को ''पृथ्वीपुत्र'' कहा गया है जिसका अर्थ है पृथ्वी से अलग होकर बना ग्रह। मंगल ग्रह का ज्ञान भारत के प्राचीन वैज्ञानिकों को था। नवग्रहों की गति आदि का उल्लेख भी उक्त कथन की पुष्टि करता है। इस प्रकार प्राचीन साहित्य में मंगल को पृथ्वी की तरह निवास का ग्रह माना हुआ है, जिसे विज्ञान ने एक बार झुठला दिया था, किन्तु अन्तत: मान लिया। यह वैदिक सिद्धान्त की जीत है।

(ग) आज के वैज्ञानिकों ने पहले यह सिद्धान्त स्थापित कि एक-सौ डिग्री तापमान में सभी जीव नष्ट हो जाते हैं। पिछले दिनों यह थ्योरी फेल हो गयी और उससे आधुनिक विज्ञान जगत् में हलचल मच गयी। न्यूजीलैंड के समुद्र में खोजने से पता लगा कि वहां के समुद्री ज्वालामुखी से समुद्र का पानी हर समय तीन-चार सौ डिग्री तापमान पर उबलता रहता है। वैज्ञानिकों को उस पानी में जीवित रहने वाले क्षुद्र जीव मिले हैं। वैदिक साहित्य में पहले से ही ऐसे जीवों की 'आग्नेय जीव' के नाम से चर्चा आती है। देखिए, न्यायदर्शन का 3.1.27 सूत्र और उस पर प्रशस्तपादभाष्य । उसमें स्पष्ट लिखा है- ''आप्यतैजसवायव्यानि लोकान्तरे शरीराणि'' अर्थात् लोक-लोकान्तरों में कहीं कहीं जलीय प्रधान, कहीं आग्नेय प्रधान, कहीं वायव्य प्रधान शरीर वाले जीव हैं । यह वैदिक तथ्य तो संस्कृत के शास्त्रों में पूर्व स्थापित तथा शोधकृत है। सूक्ष्म जीव भी मनुष्य आदि की सृष्टि के अंग हैं। महर्षि दयानन्द ने उस प्राचीन सिद्धान्त को केवल प्रस्तुत किया है। इस विषय में महर्षि को आरोपित करना व्यर्थ का प्रयास है।

(घ) इसी प्रकार सूर्य के निकट न जा पाने के कारण अभी तक सूर्य के केवल बाहरी आवरण की खोज ही हुई है, आंतरिक संरचना की नहीं। वह खोज भी केवल अनुमान मात्र है। जब तक उसकी पूर्ण खोज नहीं हो जाती तब तक किसी बात को अन्तिम निर्णय नहीं कहा जा सकता। यह भी कि सूर्य की संरचना के विषय में वैज्ञानिकों में अभी तक एक मत नहीं है, कुछ मतभेद हैं, अत: जब तक वैज्ञानिकों का एक मत स्थापित नहीं हो जाता, तब तक उनकी किसी

बात को अंतिम सिद्धान्त नहीं माना जा सकता। दूसरी बात यह है कि अभी तक प्राप्त खोज हमारे सौर मंडल के सूर्य की ही है और वह भी केवल बाहरी आवरण की है। सूर्य में कोई भी सूक्ष्म प्राणी न भी माना जाये, तो शास्त्रों और महर्षि दयानन्द का यह तथ्य तो आज भी सर्वस्वीकृत है कि सूर्य प्राणियों के वास का, निवास का मूल कारण है। यही बात वेद कहता है– ''सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च''= सूर्य जड़ और चेतन जगत् का आत्मा=अस्तित्व का मूल आधार है।

4. कांच के घर में श्री रामपाल दास

अब शास्त्रों और महर्षि दयानन्द पर आरोप लगानेवाले श्री रामपाल दास के कथनों पर भी कुछ चर्चा करनी लेनी चाहिये । जब वे महर्षि दयानन्द पर आपत्ति प्रस्तुत करते हैं तो उन पर यह हरियाणवी कहावत चरितार्थ होती है कि ''छाज तो बोले, छालनी भी क्या बोले जिसमें हजारों छेद हैं।'' जैसे छालनी में हजारों छेद हैं उसी तरह श्री रामपाल के कथनों और मत में भरपूर त्रुटियां हैं। जो व्यक्ति इक्कीस ब्रह्माण्डों के अस्तित्व की कल्पित मान्यता प्रस्तुत करता है, जो उनका कल्पित मानचित्र बनाता है, जो अपने आप घर में रखी लोहे की जाली का स्वर्गीय गुरु कबीर के चमत्कार से बढ़ जाना लिखता है, जो भैंसे से चारों वेदों के मन्त्र बुलवाने की असंभव बातें कहता है, जो आशीर्वाद से ही दूसरों के असाध्य रोगों के ठीक करने का दावा करता है, (जबकि अपनी चिकित्सा डाक्टरों से कराता है), जो इन्सान का फूल से पैदा होना, मरे हुओं को जीवित करना, मन्त्र देकर चमत्कार करना, स्वयं को भगवान् का अवतार बताना, आदि अवैज्ञानिक, अंधविश्वास और पाखण्डपूर्ण बातों को मानता है और उनका प्रचार करता है, ऐसे अंधविश्वासी व्यक्ति को किसी के कथनों में आपत्ति करने का नैतिक अधिकार ही नहीं बनता। फिर भी वह किसी शंका या आपत्ति को बार-बार विज्ञापनों में प्रकाशित कराकर प्रचारित करता-कराता है, तो इसका अर्थ यह है कि किसी विशेष लक्ष्य से श्री रामपाल दास का लक्ष्य महर्षि दयानन्द के विरुद्ध दुष्प्रचार करना है, जिज्ञासा करना नहीं।

5. वैज्ञानिकों के बदलते निष्कर्ष

अंतिम तथ्य यह है कि वैज्ञानिकों के विज्ञान विषयक सिद्धान्त और निष्कर्ष प्राय: बदलते रहते हैं। पूर्व वैज्ञानिक के निष्कर्ष बदल जाने पर उसकी पुस्तक से न तो उसके मूल वचनों को हटाया जाता है और न उससे उसकी वैज्ञानिक प्रतिष्ठा या विज्ञान पर दुष्प्रभाव पड़ता है। मूल पुस्तक से आज तक किसी वैज्ञानिक के अस्वीकृत तथ्य नहीं हटे हैं। उनके मत का उल्लेख आज भी किया जाता है, जबकि संसार का शायद ही कोई वैज्ञानिक होगा जिसके कथन या सिद्धान्त न बदले हों। बाइबल में स्पष्ट लिखा है कि 'पृथ्वी चपटी है' पृथ्वी को गोल कहने वाले गैलीलियो जैसे कई वैज्ञानिकों को ईसाइयों ने मार डाला। वैदिक सिद्धान्त पहले से ही पृथ्वी को 'भूगोल' नाम देकर 'गोल' घोषित करता है। आज के विज्ञान ने इसे अन्तिम निर्णय के रूप में स्वीकार कर लिया है। किन्तु बाइबल में वही लिखा मिलता है। श्री रामपाल दास ने आज तक उसे हटाने की बात नहीं कही। उन्हें चाहिए था कि पहले उन कथनों को हटवायें जो अवैज्ञानिक सिद्ध हो चुके हैं। क्या श्री रामपाल बाइबल से यह कथन हटवायेंगे? यदि नहीं तो फिर यह माना जायेगा कि उन्हें सत्यार्थप्रकाश से ही कोई कष्ट है, असत्य या अवैज्ञानिक सिद्धान्त से नहीं।

यदि महर्षि दयानन्द द्वारा उद्धृत यदि किसी वैज्ञानिक तथ्य का आज के विज्ञान से तालमेल नहीं बैठता तो उससे महर्षि दयानन्द सरस्वती जैसे प्रकाण्ड विद्वान् और समाज सुधारक के व्यक्तित्व या कृतित्व में अन्तर नहीं आता और न उनके समाजहितकारी कार्यों तथा सिद्धान्तों का महत्त्व घटता है। सकारात्मक पक्ष को न प्रस्तुत करके केवल आक्षेप उठाना मात्र दुर्भावना को ही प्रकट करता है।

वैज्ञानिकता की बात करने वाले श्री रामपाल दास को पहले अपने पूर्वोक्त सर्वथा असंभव, अविश्वसनीय और अन्धविश्वासपूर्ण मन्तव्यों का वैज्ञानिक परीक्षण कराना चाहिए और वैज्ञानिकों से उनकी पुष्टि करानी चाहिए। उसके बाद ही उन्हें दूसरों पर उंगली उठानी चाहिए।

महर्षि दयानन्द और नियोग : एक वस्तुपरक पुनर्विचार

– भावेश मेरजा

प्रस्तावना :

महर्षि दयानन्द सरस्वती (1825–1883 ई.) के विचारों में नियोग संभवत: सबसे अधिक विवादित विषयों में से एक है। उनके एवं आर्य समाज के विरोधियों ने इसे कभी व्यभिचार का समर्थन कहा, कभी स्त्री की गरिमा के विरुद्ध बताया, और कभी यह प्रचारित किया कि महर्षि समाज में अराजक यौन व्यवस्था लाना चाहते थे। परंतु जब हम संपूर्ण संदर्भ में उनके एतद् विषयक विचारों को देखते हैं, तो एक भिन्न चित्र सामने आता है।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में नियोग का प्रतिपादन करते हुए यह दर्शाया है कि यह कोई नवीन कल्पना नहीं, बल्कि वैदिक एवं प्राचीन आर्य परंपरा में विशेष परिस्थितियों के लिए मान्य व्यवस्था रही है। उन्होंने वेदों, विशेषत: कुछ ऋग्वैदिक और अथर्ववैदिक मंत्रों की ऐसी व्याख्या प्रस्तुत की, जिनमें विधवा के पुन: सामाजिक जीवन, वंशरक्षा तथा संतान–प्राप्ति के लिए नियोग के संकेत दिखाई दिए। परंतु आलोचक कहते हैं कि इन वेद–मंत्रों का मूल अर्थ नियोग नहीं, बल्कि अन्य सामाजिक संदर्भों से भी संबंधित हो सकता है। यहाँ वस्तुनिष्ठ निष्कर्ष यह होगा कि महर्षि ने वेदों में नियोग की संभावना और संकेत देखे, किंतु सभी विद्वान् इस व्याख्या से सहमत नहीं हैं। यह मतभेद मुख्यत: व्याख्या–पद्धति का है। इसके अतिरिक्त महर्षि ने महाभारत में व्यास जी द्वारा अपने मृत भाई विचित्रवीर्य आदि की पत्नियों अम्बिका और अम्बालिका से नियोग के माध्यम से संतानोत्पत्ति के प्रसंग आदि का उल्लेख किया। महर्षि का तर्क था कि जब विशेष परिस्थितियों में वंश–रक्षा और सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता उत्पन्न हो, तब नियमपूर्वक और मर्यादित रूप से नियोग स्वीकार किया जा सकता है। उन्होंने इसे सामान्य जीवन–पद्धति नहीं, बल्कि अपवादस्वरूप सामाजिक व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया। महर्षि ने महाभारत के इन दृष्टान्तों का उल्लेख यह दिखाने के लिए किया कि विशेष परिस्थितियों में ऐसी व्यवस्थाएँ प्राचीन भारतीय परंपरा में अज्ञात नहीं थीं। लेकिन यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि महाभारत स्वयं इन घटनाओं को कोई सामान्य सामाजिक नियम नहीं बनाता, क्योंकि यह एक विशेष अथवा आपात परिस्थिति का समाधान था।

किसी भी ऐतिहासिक विचारक को समझने का न्यायपूर्ण तरीका यह है कि उसे उसके समय, परिस्थितियों और मूल उद्देश्य के संदर्भ में देखा जाए; न कि किसी एक वाक्य को अलग करके निर्णय दिया जाए। महर्षि दयानंद का उद्देश्य समाज में कामुकता बढ़ाना नहीं था। उनका उद्देश्य परिवार, वंश और सामाजिक व्यवस्था की रक्षा तथा अनैतिक संबंधों की रोकथाम था।

नियोग क्या है? :

महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश के स्वमंतव्यामंतव्यप्रकाश प्रकरण में लिखा है – ''विवाह के पश्चात् पति के मर जाने आदि वियोग में अथवा नपुंसकत्वादि स्थिर रोगों में स्त्री वा पुरुष आपत्काल में स्ववर्ण वा अपने से उत्तम वर्णस्थ पुरुष वा स्त्री के साथ नियोग कर संतानोत्पत्ति कर लेवें।'' सरल शब्दों में, नियोग एक ऐसी व्यवस्था थी जिसमें अत्यंत विशेष परिस्थितियों में संतान–प्राप्ति के लिए सीमित, नियंत्रित और सामाजिक रूप से स्वीकृत उपाय अपनाया जाता था। यह सामान्य विवाह नहीं था। यह प्रेम–संबंध नहीं था। यह कामतृप्ति की व्यवस्था नहीं थी। यह केवल संतान–प्राप्ति संबंधी सामाजिक समस्या के समाधान का एक उपाय माना गया था।

महर्षि के समय की सामाजिक परिस्थिति :

आज का समाज और उन्नीसवीं शताब्दी का समाज एक जैसे नहीं थे। उस समय विधवाओं का पुनर्विवाह बहुत कम होता था। अनेक स्त्रियाँ बाल–विधवा हो जाती थीं। पुत्रहीनता को गंभीर सामाजिक समस्या माना जाता था। वंश और संपत्ति की व्यवस्था संतान से जुड़ी थी। अनेक स्थानों पर गुप्त अनैतिक संबंध उत्पन्न होते थे। महर्षि ने देखा कि समाज में बाहरी धार्मिकता तो है, लेकिन भीतर अनेक अनैतिकताएँ चल रही हैं। उन्होंने सोचा – यदि संतान की आवश्यकता हो और समाज उचित मार्ग न दे, तो लोग छिपकर अनुचित मार्ग अपनाएँगे। इसलिए उन्होंने कहा कि यदि ऐसी विषम परिस्थिति हो तो समाज नियंत्रित व्यवस्था दे।

क्या महर्षि ने नियोग को सामान्य नियम माना? :

नहीं। यही सबसे बड़ी गलतफहमी पैदा होती है। महर्षि ने इसे सामान्य विवाह–पद्धति नहीं बनाया। उन्होंने विवाह को ही सर्वोत्तम और प्राकृतिक व्यवस्था माना। नियोग को उन्होंने

अपवाद माना, आपत्काल अथवा आपद्धर्म माना – नियम नहीं। जिस प्रकार चिकित्सा में शल्यक्रिया (ऑपरेशन) सामान्य जीवन का नियम नहीं होती, बल्कि विशेष परिस्थिति का उपाय होती है, उसी प्रकार नियोग को भी एक असाधारण व्यवस्था के समाधान के रूप में देखा गया।

नियोग पर महर्षि द्वारा लगाए गए अनुशासन :

यदि कोई व्यक्ति इस विषय में महर्षि के ग्रंथों के केवल कुछ वाक्यों को अलग करके पढ़े, तो भ्रम उत्पन्न हो सकता है। परंतु महर्षि ने इस विषय में अनेक कठोर सीमाएँ भी रखीं। उनके विचारों का सार इस प्रकार है – 1. नियोग का उद्देश्य केवल संतान-प्राप्ति है – भोग नहीं, कामवासना की संतुष्टि नहीं। 2. सीमित अवसर – यह निरंतर संबंध नहीं था, कुछ निर्धारित समय तक का था। नियोग को स्थायी दाम्पत्य संबंध नहीं माना गया। 3. इसके लिए सामाजिक स्वीकृति अनिवार्य थी और इसके नियम विशेष थी; यह कोई गुप्त संबंध नहीं था। यह समाज और परिवार की जानकारी में होना चाहिए। 4. महर्षि ने चरित्रवान, योग्य, स्वस्थ और सदाचारी व्यक्ति के चयन की बात कही। 5. संख्या की मर्यादा – नियोग के अंतर्गत असीमित संतान या असीमित संबंधों की अनुमति नहीं थी।

क्या नियोग व्यभिचार नहीं? :

यह सबसे सामान्य प्रश्न है। इसका उत्तर समझने के लिए पहले व्यभिचार की परिभाषा समझनी होगी। व्यभिचार कहते हैं – छल, स्वार्थ या वासना से प्रेरित, सामाजिक और नैतिक दायित्व से रहित किए गए अनुचित यौन संबंध को। महर्षि के अनुसार नियोग में कोई गोपनीयता नहीं है, इसका उद्देश्य वासनापूर्ति नहीं है, इसमें सामाजिक उत्तरदायित्व है, इसके स्पष्ट नियम हैं। इसलिए महर्षि के सिद्धांत में नियोग और व्यभिचार एक नहीं, अलग हैं। महर्षि का विश्वास था कि कठोर सामाजिक मर्यादा नियोग के संभावित दुरुपयोग को रोकेगी। फिर भी आलोचना का प्रश्न इसके संभावित दुरुपयोग को लेकर उठ सकता है, न कि महर्षि द्वारा प्रतिपादित मूल सिद्धांत को लेकर।

क्या नियोग में स्त्री को वस्तु समझा गया? :

आलोचक यह भी कहते हैं कि इससे स्त्री का सम्मान कम होता है, इसलिए इस प्रश्न को गंभीरता से देखना चाहिए। महर्षि दयानन्द ने अन्य अनेक विषयों में स्त्री को उच्च स्थान दिया; जैसे कि, स्त्री शिक्षा, स्त्री को वेदाधिकार, बाल-विवाह का विरोध, विधवा विवाह का समर्थन और स्त्री सम्मान इत्यादि। इन सब विषयों में वे अपने समय से बहुत आगे थे। इसलिए यह कहना कठिन है कि उनका उद्देश्य स्त्री को वस्तु बनाना था। उनका उद्देश्य सामाजिक समस्या का समाधान प्रस्तुत करना था।

महर्षि दयानंद ने नियोग की चर्चा मुख्यत: सामाजिक, पारिवारिक और वंश-संबंधी समस्या के समाधान के रूप में की। उन्होंने उसके नियम, मर्यादाएँ और उद्देश्य पर पर्याप्त बल दिया। परंतु आज के समय में लोग किसी व्यवस्था का मूल्यांकन करते समय एक अतिरिक्त पक्ष पर भी विशेष ध्यान देते हैं – जैसे संबंधित स्त्री या पुरुष की व्यक्तिगत भावनाएँ, मानसिक सहजता, स्पष्ट और स्वतंत्र सहमति, तथा दीर्घकालिक मनोवैज्ञानिक प्रभाव। इन पहलुओं पर उस समय वैसी भाषा और वैसा पृथक् विश्लेषण सामान्यत: नहीं मिलता जैसा आज अपेक्षित माना जाता है। आशय यह है कि उन्नीसवीं शताब्दी और आज की सामाजिक चर्चा की शैली अलग है। उदाहरण के लिए, यदि आज कोई ऐसी व्यवस्था प्रस्तावित की जाए तो लोग पूछेंगे – क्या संबंधित स्त्री और पुरुष की पूर्ण स्वेच्छा है? क्या उन पर परिवार या समाज का दबाव तो नहीं? इससे उनके मानसिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा? भविष्य में संबंधों पर क्या प्रभाव होगा? आज इन प्रश्नों को अलग और प्रमुख विषय माना जाता है। लेकिन यह कहना उचित नहीं होगा कि महर्षि दयानंद ने स्त्री की इच्छा या सम्मान की उपेक्षा की। वास्तव में उन्होंने अनेक स्थानों पर स्त्री-शिक्षा, स्त्री के वेदाधिकार, विवाह में उचित आयु, और स्त्री के सम्मान की जोरदार वकालत की थी। अत: यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होगा कि महर्षि स्त्री की स्वतंत्रता या सम्मान के प्रति उदासीन थे। क्योंकि ऐतिहासिक व्यक्तियों के विचारों का विश्लेषण करते समय अनजाने में आधुनिक मानदंड सीधे उन पर आरोपित हो जाएँ, तो कभी-कभी चित्र विकृत हो सकता है।

क्या सत्यार्थ प्रकाश में नियोग-विषयक चर्चा को और अधिक स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया जा सकता था? :

यह प्रश्न उठ सकता है। महान् व्यक्तियों की प्रत्येक बात अंतिम, सर्वथा संपूर्ण और त्रुटिरहित मानना आवश्यक अथवा अनिवार्य नहीं। संभव है कि – कुछ बातें भाषा की दृष्टि से आज अटपटी लगे, कुछ नियम अनुपयुक्त लगें, और ऐसा भी

शेष पृष्ठ ३१ पर......

कबीरभक्त श्री रामपाल दास के अनर्गल प्रलाप

–प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'
वेद सदन, अबोहर–151116

रोहतक जनपद के एक कबीरपंथी गुरु श्री रामपाल कुछ समय से महर्षि दयानन्द व वेद के बारे में अनर्गल प्रलाप करते चले जा रहे हैं। ऋषि दयानन्द के प्रति श्रीमान् का द्वेष इस सीमा तक पहुंच चुका है कि आप पैसा फूंककर समाचार पत्रों/सोशल मीडिया में महर्षि दयानन्द जी महाराज के संबंध में विज्ञापन भी देते हैं। धर्म कर्म से इस कथित धर्मगुरु का कुछ लेना देना नहीं है। मतभेद तो संसार में हो सकता है परन्तु इस व्यक्ति ने तो कभी भूलकर भी ऋषि के किसी उपकार के लिए दो शब्द भी नहीं कहे व लिखे।

विचित्र बात तो यह है कि यह महाराज सन्त कबीर का नाम लेकर जनता को भ्रमित कर रहे हैं। हठ व दुराग्रह की भी कोई सीमा होती है, यह सब सीमाओं को लांघ चुके हैं। अपने आपको कबीरपंथी कहने व बतानेवाले इस बाबा ने कबीर जी को समझने व जानने का यत्न नहीं किया। वेद में 'कविर्मनीषी' शब्द इस सज्जन को दिखाई दे गया तो यह चिल्लाने लगे, देखो! वेद में 'कबीर' शब्द आया है। अब ऐसे व्यक्ति को कोई क्या समझाये ?

जो कबीर जी को भी नहीं सूझा :– आप कबीर जी की सारी वाणी पढ़ जायें, कबीर जी के एक भी दोहे में यह दावा नहीं किया गया कि वेदों में 'कबीर' जी का नाम अथवा कबीर शब्द आया है। कबीर जी को अपने नाम की ऐसी भूख नहीं थी। उन्होंने किसी भी आर्ष ग्रन्थ में 'कबीर' के उल्लेख का ढोल नहीं पीटा। यह बाबा जिस ढंग से अपना गुरुडम चला रहे हैं, यह कोई सत्य–असत्य का निर्णय करने वाला रंग–ढंग नहीं है। कल को यह हिन्दी, पंजाबी आदि भाषाओं में वीर बीर देखकर यह शोर मचा सकते हैं कि वीर व बीर महात्मा कबीर के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। जो ऐसी बेतुकी बातें करने वाले पहले भी अनेक लोग हो चुके हैं, उनमें किसी को वेद में ईसा मिला, तो किसी ने 'कादी' शब्द पाकर कादियाँ व कादियाँ के स्वदेशी नबी मिर्जी गुलाम अहमद को वेद में खोज निकाला। इस सस्ती खोज का लाभ उठाने वाले अनेक व्यक्ति पहले हो चुके हैं। पौराणिक साहित्य में सम्भल में ब्राह्मण अवतार के आने की चर्चा हम सुनते आए हैं। इसी का लाभ उठाकर कादियानी व कई अन्य मुस्लिम मतों ने मिर्जा गुलाम अहमद आदि को पुराणों में वर्णित अवतार घोषित कर दिया। ये लोग यह भूल गए कि वहां ब्राह्मण कुल में अवतार के जन्म लेने की भविष्यवाणी है। मिर्जा गुलाम अहमद व मुहम्मद साहेब पर यह भविष्यवाणी चरितार्थ करने वालों ने इनकी माताओं के मान–सम्मान का ध्यान भी न रखा। मिर्जा तो स्वयं को ही रुद्र गोपाल बताता रहा।

कबीर जी उर्दू लेखक थे क्या ? – रामपाल जी ने कुरान में भी 'कबीर' को खोज निकाला। यहां भी वही अनर्थ कर डाला। आपने यह जानने का प्रयास ही नहीं किया कि अरबी, फारसी व उर्दू में कबीर शब्द का अर्थ क्या है। कुरान में जहां आपको कबीरदर्शन हुआ वहां कबीर जिहाद व अजाब (दु:ख) का विशेषण है। कबीर अपने आपमें कोई संज्ञा नहीं। एक पुस्तक का नाम है 'तफसीरे कबीर' कई भागों में छपे इस ग्रन्थ की बाबा रामपाल दास को जानकारी देनी पड़ेगी। इस तथ्य का ज्ञान पाकर यह घोषणा कर सकते हैं कि कबीर जी उर्दू के जाने माने लेखक थे, वे कुरान के भाष्यकार थे।

यह मत कबीर को मौलाना आजाद व जार्ज फर्नांडीस से भी जोड़ सकता है। कारण ? हुमायूँ कबीर मौलाना आजाद के सहयोगी थे। जार्ज फर्नांडीस के रिश्तेदार थे। हम फिर यही कहेंगे कि सन्त कबीर जी को कुरान में अपना नाम होने का बोध न हुआ। उन्होंने तो कुरान की कई मान्यताओं का खण्डन किया।

कबीर जी को भगवान् कहां मिला? :- सन्त कबीर बड़े भ्रमणशील महात्मा थे। उन्हें घूमते फिरते कहीं भी नरदेहधारी भगवान् के दर्शन नहीं हुए। रामपाल जी को तो कहीं दूर जाना व भटकना नहीं पड़ा। झज्जर के पास ही किसी गांव में भगवान् घूमता-घुमाता इनकी पकड़ में आ गया। इस दृष्टि से रामपाल दास जी तो कबीर जी को मात दे गये। कबीर परमानन्द परमेश्वर के उपासक थे। यह कबीर ही को भगवान् बनाने पर तुले बैठे हैं।

कबीर उदास होते थे :- कबीर जी तो उदास भी होते थे। दु:ख-सुख का अनुभव करते थे। रामपाल उन्हें पूर्ण परमानन्द बताकर कबीर जी का ही निरादर कर रहे हैं। कबीर जी ने जीवदया व शाकाहार का प्रचार किया। पशुहिंसा देखकर वे व्यथित व व्याकुल थे। उन्होंने झटका व हलाल दोनों पर रक्त रोदन किया। आज सारे देश में गोवंश का सर्वनाश हो रहा है। पशु हिंसा के लिए नये-नये बूचड़खाने खुल रहे हैं। रामपाल जी ने मांसाहार के विरुद्ध अभियान छेड़ने की बजाए प्राणिमात्र के हितैषी, परोपकारी, दयालु दयानन्द के विरुद्ध मोर्चा खोल रखा है। न इन्हें वेद का ज्ञान है, न यह कुरान, बाइबल व गुरुग्रन्थ साहेब को जाने। एक- आध महर्षि दयानन्द तथा वेदों पर आक्षेप के उत्तर के शब्दों को पकड़कर ज्ञानी ध्यानी बनकर अपनी महिमा का बखान कर रहे हैं हल्दी की एक गांठ पाकर चूहा पंसारी बन बैठा, यह दुर्भाग्यपूर्ण है ।

दंगई रामपाल :- सिखों को आर्यसमाज के विरुद्ध उकसाकर देश में दंगा करवाने व विष फैलाने का घृणित कार्य करने में लगा रामपाल दंगई है, कोई धर्मगुरु नहीं। रामपाल जी सिखों को भड़काने के लिए ऋषि के शब्दों को तोड़-मरोड़कर पेश कर रहे हैं। वे सिखों को यह क्यों नहीं बताते कि कबीर जी ने पवित्र केशों के बारे क्या-क्या लिखा है ? केश रखने का सिख भाई अपने मत की जान व पहचान बताते हैं। कबीर जी को 'धरड़ मुण्डाने' में कोई दोष दिखाई नहीं देता। कबीर जी के ऐसे सब वचन सिखों के गुरुद्वारों के पास या सिखों के ग्रामों में सुनाया करो। इनका भी विज्ञापन दिया करो।

हमें इस बात का गर्व है कि गुरु नानक जी ने वेद के एक ओंकर की उपासना पर बल दिया। गुरु के बाग के मोर्चा में जब अकाल तख्त पर सिंहगर्जना करके हमारे स्वामी श्रद्धानन्द को विदेशी सरकार ने पिंजरे में बन्दी बनाया तब आपके पंथाई कहीं दूर-दूर तक दिखाई नहीं देते थे।

जब श्रद्धानन्द सिखों के लिए बुढ़ापे में कारागार की यातनाएं सह रहे थे तब आपके पंथाई कहां लुक-छुपकर समाधि लगाए बैठे थे ? आपको बता दें कि तब जेल में सिख ग्रंथियों व नेताओं के शब्दकीर्तन व उपदेश के उपरान्त सिख नेता सरदार मेहताबसिंह जी स्वामी श्रद्धानन्द महाराज से सिख पंथ को अपना आशीर्वाद देने के लिए विनती किया करते थे। इतिहास के इस पृष्ठ को रामपाल विज्ञापन के रूप में क्यों नहीं देते? घृणा, द्वेष व झूठ के इस ठेकेदार को क्या पता कि जेल से मुक्त होकर हरिद्वार जा रहे स्वामी श्रद्धानन्द जी को सिख भाई आग्रहपूर्वक ट्रेन से उतारकर फिर अकाल तख्त पर ले गए। आर्यों की इस शान को आप क्या जानें ?

वीर चिंरजीवी का सम्मान :- रामपाल क्या जानें कि सिखों की रक्षा व सेवा के लिए सिखों ने पं. लेखराम व आर्य हुतात्मा चिंरजीवलाल का कितना सम्मान किया। गुरुद्वारा शहीदगंज की कहानी रामपाल क्या जानें ? आग लगाना आसान है। जोड़ना कठिन है। मतभेद हमारे हैं परन्तु हम द्वेषी नहीं।

रामपाल को यह भ्रम नहीं रखना चाहिए कि वे विभिन्न सम्प्रदायों में विद्वेष और दंगा फैलाने में सफल हो जायेंगे। सभी लोग उनकी करतूतों को समझते हैं। लोग उनके भक्तों के समान आंख

मूंदकर सब कुछ मानने वाले नहीं हैं।

रामपालदास को संस्कृत का सामान्य ज्ञान भी नहीं

यदि कोई अंग्रेजी में '**आई गो**' की जगह '**आई गोज्**' बोले और दावा करे कि मैं अंग्रेजी जानता हूं और मैं नाटककार शेक्सपीयर के अंग्रेजी नाटकों का अर्थ कर सकता हूं, तो क्या कोई बुद्धिमान् उसकी बात पर विश्वास करेगा ? सभी का एक ही उत्तर होगा- 'नहीं।'

यही स्थिति संस्कृत भाषा में श्री रामपाल दास की है। उन्हें विभक्तियों, क्रियाओं, वचनों, पुरुषों, धातु-प्रत्ययों, नियमों आदि का ज्ञान नहीं है। वे संस्कृत की एक पंक्ति न बोल सकते हैं, न लिख सकते हैं, न समझ सकते हैं, फिर भी वेदभाष्यकार और गीता के भाष्यकार होने का दम्भ भरते हैं। अल्पपठित तो गुमराह हो सकते हैं, किन्तु अशुद्ध अर्थ करने वाले ऐसे व्यक्ति को बुद्धिमान् लोग विद्वान् या तत्त्वदर्शी कैसे मान सकते हैं? पाठक नीचे देखें उनके अशुद्ध संस्कृत ज्ञान के कुछ उदाहरण। इनमें पहले शुद्ध रूप है। बाद में श्री रामपाल कृत अशुद्ध अर्थ दिया है -

1. **पूर्णपरमात्मने नमः**
   पूर्णपरमात्माय नमः (दासकृत गीता भाष्य के पहले पृष्ठ पर अशुद्ध प्रयोग किया है)
2. **अश्वत्थ = पीपल या नश्वर**
   घोड़े जैसा मजबूत (गीता 15 . 1)
3. **शमीष्व = शुद्ध करो (क्रिया)**
   शान्ति प्राप्ति के लिए
4. **पूजनीय शुद्ध**
   पुज्यनीय (दास का अशुद्ध प्रयोग)
5. **ब्रह्माण्ड**
   ब्रह्मण्ड (दास का अशुद्ध प्रयोग)
6. **मत्+अर्पणम् = मुझको अर्पण करो**
   मतानुसार अर्पण करो
7. **मत्+भावम् आगताः=मेरे आश्रय को प्राप्त हो चुके हैं**
   मतावलम्बी हो चुके हैं (गीता 4.10)
8. **अग्नेःतनूरसि= हे अग्नि! तू यज्ञ का शरीर है (यजुर्वेद 1.15)**
   ''अग्ने=परमेश्वर! तू सशरीर है।'' यहां यज्ञ के प्रसंग में वेदमन्त्रार्थ में 'परमेश्वर' और ''सशरीर'' शब्द अपने मन से जोड़ लिया।

इसी प्रकार वेदमन्त्रों और गीता के श्लोकों की इनकी दर्जनों अशुद्ध व्याख्याएं हैं।

'यह आर्यावर्त्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है, इसलिए इस भूमि का नाम सुवर्णभूमि है क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है.... जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते हैं और आशा रखते हैं। पारसमणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो झूठी है, परन्तु आर्यावर्त्त देश ही सच्चा पारसमणि है जिसको लोहे रूपी दरिद्र विदेशी छूते ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।''

- महर्षि दयानन्द सरस्वती

समस्त आर्य संस्थाओं, आर्य प्रतिनिधि सभाओं, गुरुकुलों, आर्य समाजों एवं आर्यबन्धुओं के नाम ऋषि-गौरव संरक्षणार्थ एक राष्ट्रीय आह्वान

विषय : महर्षि दयानन्द सरस्वती के विरुद्ध सोशल मीडिया पर प्रसारित अपमानजनक एवं अवमाननापूर्ण सामग्री के वैधानिक प्रतिकार तथा राष्ट्रव्यापी संगठनात्मक जागरण के संबंध में।

प्रिय आर्यबन्धुओ!

सादर नमस्ते।

महर्षि दयानन्द सरस्वती केवल आर्यसमाज के प्रवर्तक ही नहीं, अपितु आधुनिक भारत में वैदिक धर्म के पुनर्जागरण, सामाजिक नवचेतना, स्त्री-शिक्षा, जातिगत कुरीतियों के उन्मूलन, राष्ट्रजागरण तथा सत्यधर्म के अद्वितीय उद्घोषक थे। उनका व्यक्तित्व सम्पूर्ण मानवता के लिए प्रेरणा का स्रोत तथा उनका गौरव सम्पूर्ण राष्ट्र की अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर है।

अत्यन्त खेद एवं चिन्ता का विषय है कि कुछ असामाजिक एवं समाजविघातक तत्वों द्वारा सोशल मीडिया के माध्यम से महर्षि दयानन्द सरस्वती के विरुद्ध अत्यन्त अशोभनीय, अपमानजनक एवं अवमाननापूर्ण चित्र एवं सामग्री प्रसारित की जा रही है। ऐसी कुत्सित एवं निन्दनीय गतिविधियाँ न केवल करोड़ों आर्यजनों की धार्मिक एवं सांस्कृतिक भावनाओं को आहत करती हैं, अपितु सामाजिक सौहार्द एवं राष्ट्रीय एकता को भी प्रभावित करने का प्रयास करती हैं।

परोपकारिणी सभा, अजमेर ने इस विषय को अत्यन्त गंभीरता से लेते हुए विधिसम्मत कार्यवाही का मार्ग अपनाया है तथा संबंधित व्यक्तियों के विरुद्ध राष्ट्रीय साइबर अपराध पोर्टल पर विधिवत शिकायत दर्ज करा दी है।

साइबर शिकायत क्रमांक : 22707260039984 दिनांक : 01 जुलाई 2026

यह कार्य किसी व्यक्ति विशेष के प्रति द्वेषवश नहीं, अपितु महर्षि दयानन्द के गौरव, वैदिक संस्कृति की मर्यादा तथा संविधान सम्मत अभिव्यक्ति की सीमाओं के भीतर उत्तरदायी सामाजिक आचरण की रक्षा के उद्देश्य से किया गया है।

आज आवश्यकता है कि सम्पूर्ण आर्य समाज इस विषय में एक स्वर, एक विचार एवं एक संकल्प के साथ जागृत होकर वैधानिक एवं लोकतांत्रिक माध्यमों से अपना उत्तरदायित्व निभाए। महर्षि दयानन्द का सम्मान केवल परोपकारिणी सभा का ही नहीं, अपितु प्रत्येक आर्य संस्था, प्रत्येक गुरुकुल, प्रत्येक आर्य समाज तथा प्रत्येक आर्यजन का समान दायित्व है।

अत: समस्त आर्य संस्थाओं एवं आर्यबन्धुओं से सादर निवेदन है कि-

1. परोपकारिणी सभा द्वारा की गई इस वैधानिक पहल से प्रेरणा ग्रहण करते हुए अपने-अपने स्तर पर भी आवश्यकतानुसार साइबर अपराध प्रकोष्ठ एवं अन्य सक्षम प्राधिकारियों के समक्ष शिकायत प्रस्तुत करें।
2. सोशल मीडिया मंचों पर उपलब्ध Report (रिपोर्ट) सुविधा का उपयोग करते हुए इन आपत्तिजनक प्रोफाइलों एवं पोस्टों की सामूहिक रूप से रिपोर्ट करें, जिससे ऐसी अवमाननापूर्ण सामग्री को शीघ्र हटाया जा सके तथा दोषियों के विरुद्ध आवश्यक कार्यवाही सुनिश्चित हो।
3. इस प्रकार की आपत्तिजनक सामग्री का अनावश्यक प्रचार-प्रसार अथवा पुनर्प्रेषण करने से बचें। उसका उत्तर केवल वैधानिक, मर्यादित एवं तथ्याधारित माध्यमों से ही दिया जाए।
4. महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन, कृतित्व, वैदिक विचारधारा एवं उनके राष्ट्रनिर्माण में योगदान का व्यापक प्रचार-प्रसार करें, जिससे समाज सत्य से परिचित हो तथा दुष्प्रचार स्वत: निष्प्रभावी हो जाए।

संबंधित फेसबुक प्रोफाइल/पोस्ट लिंक

1. https://www.facebook.com/share/p/1H5mzgyYSf/
2. https://www.facebook.com/share/1BdHh4k4f8/

उपर्युक्त फेसबुक प्रोफाइलों एवं पोस्टों के विरुद्ध फेसबुक पर Report करें तथा आवश्यकतानुसार राष्ट्रीय साइबर अपराध पोर्टल पर भी शिकायत दर्ज कराने का कष्ट करें।

आर्यबन्धुओ!

महर्षि दयानन्द ने हमें निर्भीक होकर सत्य का ग्रहण करने, अधर्म का त्याग करने तथा अन्याय का विधिसम्मत एवं मर्यादित प्रतिकार करने की शिक्षा दी है। आज आवश्यकता किसी प्रकार के आवेश या प्रतिशोध की नहीं, बल्कि संगठन, संयम, जागरूकता, विधिसम्मत कार्यवाही तथा वैदिक मर्यादा के दृढ़ पालन की है।

आइए, हम सभी संगठित होकर यह संकल्प लें कि महर्षि दयानन्द सरस्वती के सम्मान, वैदिक संस्कृति की गरिमा तथा राष्ट्रऋषियों की प्रतिष्ठा पर होने वाले प्रत्येक आघात का उत्तर हम संविधानसम्मत, शांतिपूर्ण, संयमित एवं संगठित प्रयासों द्वारा देंगे।

ऋषि का सम्मान केवल श्रद्धा का विषय नहीं, अपितु हमारा नैतिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक दायित्व भी है।

'संग' छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।' (ऋग्वेद 10.191.2)

ईश्वर से प्रार्थना है कि वह हम सभी को सत्य, धैर्य, संगठन एवं धर्मरक्षा के इस पुण्य प्रयत्न में सफल बनाए।

इति शुभम्।

भवदीय

ओम् मुनि, प्रधान

पृष्ठ २६ का शेष.....

प्रतीत हो कि ग्रन्थ में कुछ स्थानों पर अधिक स्पष्टता अपेक्षित थी। यह मान लेने से भी महर्षि का सम्मान कुछ कम नहीं होता। उनकी मूल भावना को समझना अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनकी मूल भावना थी - समाज को व्यभिचार से बचाया जाए, परिवार और वंश सुरक्षित रहे, और संतान-प्राप्ति की समस्या का सामाजिक समाधान हो।

आधुनिक समय में नियोग की प्रासंगिकता :

आज परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। आज विधवा-विवाह स्वीकृत है, दत्तक ग्रहण की व्यवस्था है और चिकित्सकीय तकनीक उपलब्ध है। कृत्रिम गर्भाधान जैसी व्यवस्थाएँ हैं। व्यक्तिगत अधिकारों की समझ अधिक जागृत और मुखर हुई है। भोगवाद, उन्मुक्त जीवन-शैली और इन्द्रिय-सुखों को भोगने की लालसा भी बढ़ रही है। इसलिए आधुनिक समाज में नियोग की आवश्यकता एवं उसका औचित्य लगभग समाप्त माना जा सकता है। परंतु इससे महर्षि के मूल उद्देश्य का महत्त्व समाप्त नहीं होता। उनका मूल सिद्धांत था - सामाजिक समस्याओं का समाधान नैतिकता और उत्तरदायित्व के साथ तथा वेदविहित ढंग से होना चाहिए। यह सिद्धांत आज भी प्रासंगिक है।

निष्कर्ष :

महर्षि दयानन्द के नियोग विषयक विचार को केवल दो-चार वाक्यों से समझना न्याय नहीं है। यदि कोई इसे व्यभिचार कहता है, तो संभवतः वह उसके पीछे की सामाजिक परिस्थिति और उद्देश्य नहीं देख रहा। कुछ विरोधी लोग ऐसा चित्र बनाते हैं मानो महर्षि समाज में अनेक स्त्री-पुरुष संबंधों की खुली व्यवस्था के पक्षधर थे। यह चित्र उनके संपूर्ण लेखन तथा व्यक्तित्व से बिलकुल मेल नहीं खाता। क्योंकि वही महर्षि कठोर ब्रह्मचर्य की बात करते हैं, इंद्रिय-निग्रह पर बल देते हैं और चरित्र की महिमा बताते हैं। ऐसा व्यक्ति सामान्य यौन-स्वच्छंदता का समर्थक कदापि नहीं हो सकता।

यदि कोई नियोग को पूर्णतः आदर्श और सर्वकालिक व्यवस्था कहता है, तो वह भी संभवतः अतिशयोक्ति कर रहा है। वस्तुपरक दृष्टि यही होगी कि महर्षि दयानन्द के लिए नियोग कोई कामप्रधान व्यवस्था नहीं था, बल्कि विशिष्ट सामाजिक आपातकालीन समस्या के समाधान हेतु प्रस्तुत एक सीमित, मर्यादित, अपवादस्वरूप और वेदशास्त्र विहित उपाय था। आज समाज बदल चुका है, इसलिए उसके व्यावहारिक रूप बदल सकते हैं; परंतु समाज की रक्षा, नैतिकता और उत्तरदायित्व की महर्षि दयानन्द की मूल भावना आज भी विचारणीय और श्रद्धेय है।